ओ३म्

धर्म-चिन्तन

जन ज्ञान मासि

॥ ओ३म् ॥

धर्म-चिन्तन

श्री भूडमल आर्य वाचनालय
हिण्डौन सिटी (राजस्थान)

धर्म के आधारभूत मंतव्यों पर
सुलझा मार्ग दर्शन

श्री ओम्प्रकाश त्यागी (संसद् सदस्य)

प्रधान संचालक

सार्वदेशिक आर्य वीर दल दिल्ली

—प्रकाशक—

जन-ज्ञान प्रकाशन नई दिल्ली ५

धरती के प्रत्येक मानव के
हृदय-मन्दिर पर "वेद ज्ञान"
की पावन पताका फहराने
के लिए
कृत संकल्प
आर्य जनता का
अपना
प्रतिनिधि प्रकाशन

जन-ज्ञान (मासिक)

१५६७ हरध्यानसिंह रोड,
नई दिल्ली-५

—संरक्षक—
चौ० प्रतापसिंह जी
—संचालक—
भारतेन्द्रनाथ

वार्षिक मूल्य १०)
एक प्रति ८० पैसे
विदेश में १ पौंड

फोन नं० ५६६६३६

—सम्पादक—
राकेश रानी

संसार में वेद का संदेश फैलाने और वैदिक साहित्य प्रकाशन के लिए

१. जन-ज्ञान (मासिक) के सदस्य बनें।

वार्षिक मूल्य : १०) आजीवन २०१)

नमूना पत्र लिखकर बिना मूल्य मँगाएँ

२. वैदिक साहित्य व अंग्रेजी के ग्रन्थ प्रकाशन हेतु व ईसाइयत के प्रवाह को रोकने के लिए उदारतापूर्वक सहयोग दीजिए।

संचालक :

जन-ज्ञान [मासिक]

१५६७, हरध्यान सिंह मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली-५

वर्ष ३ इस अंक का मूल्य २) अंक ५

सम्पादकीय

अमृत : धर्म

निराशा में व्यक्ति जब मार्ग भूल जाता है, अंधकार में जब मन डगमगाने लगता है, पाप ही जब पुण्य लगने लगता है और पुण्य की छाया भी जब डरावनी प्रतीत होती है और जीवन भार अनुभव होता है तब केवल 'धर्म' ही ऐसा तत्व है जो प्रकाश की ओर चलने की प्रेरणा कर सकता है।

"धर्म" वह आधार है जो मनुष्य को मनुष्य बना सकता है। जीवन में दुःख जब भी आता है तो समझिए "धर्म" छूट रहा है। धर्म के साथ रहते कष्ट भले ही मिलें दुःख नहीं मिल सकता।

'धर्म' नाम है उस मार्ग का जो हमें 'देव' बनाता है, आनन्द देता है, शान्ति का अमृत पान कराता है। धर्म संगीत भी है और नृत्य भी, वह शाश्वत् आनन्द और मानस का प्रेरणा पुंज है।

"धर्म" को भुला कर कोई सुखी नहीं रह सकता। चोरी, झूठ और गुंडा गर्दी कभी "धर्म" के पास नहीं आ सकतीं क्योंकि सूर्य के रहते अंधकार कैसे हो सकना है ?

भारत की समस्त बीमारियों का मूल "धर्म-त्याग" है। धर्म को साथ लेकर भारत जगद्गुरू रहा और धर्म को छोड़कर स्वतन्त्र होते हुए भी स्व-स्थिति को समाप्त करता जा रहा है।

प्रसिद्ध विचारक श्री ओम्प्रकाश त्यागी लिखित यह 'धर्म चिन्तन' धर्म के आधार भूत प्रश्नों को समझने का मार्ग दर्शन है। इसे पढ़ प्रत्येक व्यक्ति उन जटिल प्रश्नों का उत्तर पा सकेंगे, जिनमें आज तक हम सब उलझे रहे हैं।

मानस का अंधकार मिटाने के लिए धर्म की सरस व्याख्या 'धर्म-चिन्तन' अर्पित है। प्रभु कृपा करें कि हम धर्म को जीवन में धारण कर सकें।

राकेश रानी

सम्पादक

धर्म-महिमा

धर्म कभी मत छोड़ियो, धर्म सुखों की खान ।
तीन लोक की सम्पदा, बसी धर्म में आन ।।
दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लगि घट में प्राण ।।
क्षमा विवेक सुदम दया, सत्य वचन तप दान ।
शील, धैर्य, संतोष ये, धर्म लिंग दश जान ।।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ —मनु

धैर्य, क्षमा, मन को वश में रखना, चोरी न करना, आन्तरिक एवं बाह्य शुद्धि इन्द्रियों को वश में रखना, वेदादि शास्त्र ज्ञान द्वारा बुद्धि, को बढ़ाना, आत्मज्ञान, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्म के लक्षण हैं ।

यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः । —कणाद्

जिससे लौकिक और पारलौकिक उन्नति हो उसे धर्म कहते हैं ।

धर्मः कामदुधा धेनुः । —बृहन्नारदपुराण

धर्म सब कामनाओं को को पूर्ण करने वाली गौ है ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत् ॥

—वेदव्यास

मरा हुआ धर्म मनुष्य को मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म मनुष्य की रक्षा करता है । अतः धर्म का हनन कभी नहीं करना चाहिये, जिससे मारा हुआ धर्म हमारा नाश न कर दे ।

●

प्राक्कथन

२५ जौलाई सन् १९६३ को श्रद्धेय स्वर्गीय स्वा० ध्रुवानन्द जी महाराज की प्रेरणा व आग्रह पर मुझे पूर्व अफ्रीका स्थित केनिया राज्य की राजधानी नैरोबी आर्य समाज के उत्सव पर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उत्सव के पश्चात् मुझे केनिया के अतिरिक्त यूगाण्डा, टनजानिया अर्थात् टैंगानिका तथा जंजीवार आदि देशों में प्रचारार्थ भ्रमण करने का अवसर मिला।

पूर्वी अफ्रीका में लगातार ढाई वर्ष वहाँ पर रह रहे भारतीयों की स्थिति, भावना, आकांक्षा तथा समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि यदि वहाँ आर्य समाज न होता तो वहाँ के भारतीयों का स्वरूप ही भिन्न होता। आर्य समाज ने अपने स्कूल तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यों के द्वारा वहाँ के वैदिक धर्मियों के हृदयों में वैदिक धर्म व संस्कृति के दीप को कभी बुझने नहीं दिया अन्यथा पाश्चात्य संस्कृति के तूफान में उनका बह जाना स्वाभाविक था।

आर्य समाज ने पूर्वी अफ्रीका में किस प्रकार धर्म की ज्योति को प्रज्वलित रखा इसका सबसे बड़ा प्रमाण मुझे उस समय देखने को मिला जब नैरोबी आर्य समाज के उत्सव पर आयोजित यज्ञ पर उपस्थित लगभग ढाई सौ मातायें व बहिनें सामूहिक रूप से यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण सस्वर कर रहीं थीं। ऐसा दृश्य कम से कम मुझे भारत में भी कहीं देखने को नहीं मिला।

सन् ६३ में केनिया के स्वतंत्र होते ही उसकी सरकार ने अपनी शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया। परिणामस्वरूप स्कूलों में पढ़ने वाले वैदिक धर्मी बच्चों को वैदिक धर्म पढ़ाना अनिवार्य हो गया; परन्तु उन्हें कौन वैदिक धर्म का शिक्षण दे ? यह प्रश्न वहाँ उपस्थित हो गया। ईसाई तथा इस्लाम धर्म के शिक्षण के लिये बड़ी सरलता से व्यवस्था

हो गई परन्तु वैदिक धर्म का शिक्षण देना एक समस्या बन गई। जिन अध्यापकों को धर्म शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया उन्होंने धर्म शिक्षण के नाम पर रामायण व महाभारत पढ़ाना उचित समझा।

आर्य प्रतिनिधि सभा पूर्व अफ्रीका ने इस नई समस्या को अनुभव किया और उसके माननीय मन्त्री श्री चन्द्रप्रकाश जी ने इस पर विचारार्थ शिक्षकों की एक बैठक बुलाई, जिसमें विचार किया गया कि वैदिक धर्म का शिक्षण कैसे दिया जाये ? इस सम्बन्ध में शिक्षकों के लड़खड़ाते हुये भ्रान्ति पूर्ण विचारों को सुनकर मैंने निर्णय किया कि प्रति सप्ताह बृहस्पतिवार को वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर एक लेख वहाँ के अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्रों में दूँगा और नीचे लिखे विषयों पर विद्यार्थियों की रुचि के अनुसार पुस्तकें लिखूँगा अर्थात्—

१. धर्म का साधारण रूप से परिचय।

२. धर्म क्या है ?

३. वैदिक धर्म की विशेषतायें।

ऊपर लिखित निर्णय लेने के पश्चात् मैंने नित्य प्रातःकाल एक विषय पर एक लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया; परन्तु जब पूर्वी अफ्रीका से इंग्लैंड आदि यूरोपियन देशों के दौरे पर चला गया तो वह लेखमाला का क्रम टूट गया। साथ ही भारत लौटने पर राजनैतिक चुनाव व लोक सभा के कार्यों में अपने निश्चय को भूल गया परन्तु सार्वदेशिक साप्ताहिक पत्र के प्रबन्धक श्री चतुरसैन जी के आग्रह पर मैंने उन लेखों में से कुछ प्रकाशनार्थ दे दिये; जिनका जनता ने अच्छा स्वागत किया ; और उन्हें पुस्तकाकार रूप देने को सुझाव दिया परन्तु साधनों के अभाव में पुस्तक छपवाने की बात बराबर टलती गई।

मैं श्री भाई भारतेन्द्रनाथ जी का इस बात के लिये आभारी हूँ कि उन्होंने मेरे लेखों को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करते हुये मुझे उन्हें पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की प्रेरणा ही नहीं की अपितु स्वयं प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर ले लिया। वैदिक धर्म सम्बन्धी ग्रन्थों को बड़े ही आकर्षक

रूप में छपवाकर कम से कम मूल्य पर अधिक से अधिक संख्या में जनता में पहुँचा देना उनकी अपनी ही कला है। अतः इसके प्रकाशन का पूर्ण श्रेय उन्हीं को है।

मैं वैदिक धर्म का विद्वान् नहीं अपितु विद्यार्थी हूँ। विद्यार्थी से भूल हो जाना स्वाभाविक है। पाठक गण इस पुस्तक को एक विद्यार्थी के प्रयास के रूप में ही देखेंगे ऐसी मेरी आशा है। इस पुस्तक में विभिन्न विषयों पर सभी प्रश्नों का उत्तर देना स्थानाभाव के कारण सम्भव भी नहीं था; और साथ ही सभी प्रश्नों का मेरे मस्तिष्क में आ जाना भी कठिन था। एक विषय पर जितने प्रश्न मेरे मस्तिष्क में उठे उनका अपनी योग्यतानुसार समाधान करने का मैंने प्रयास किया है।

पाठकों से मेरी प्रार्थना है कि वह आलोचक के रूप में नहीं अपितु एक सहायक के रूप में इस पुस्तक की त्रुटियो की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करें; और साथ ही पुस्तक में लिखित विषयों पर ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न भी लिखकर भेजें जिनका समाधान विषय की पूर्णता के लिये आवश्यक है। उनके इस सहयोग के लिये मैं आभारी हूँगा।

मैं आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् तथा रिसर्च स्कालर माननीय आचार्य वैद्यनाथ जी का विशेष रूप से आभारी हूँ कि उन्होंने इस तुच्छ प्रयास को अपना आशीर्वाद प्रदान कर मेरा उत्साह बढ़ाया है। यदि इसी प्रकार पाठकों ने भी मेरा उत्साह वढ़ाया तो मैं शीघ्र उनकी सेवा में वदिक धर्म की विशेषताएं नामक पुस्तक उपस्थित कर दूँगा। पुस्तक लगभग समाप्ति पर है।

—ओमप्रकाश त्यागी
(संसद् सदस्य)

१५ कैनिंग लेन
नई दिल्ली
१५-८-७०

शुभ कामना

ज्योतिर्मय !

वर्तमान भौतिकवादी प्रवाह मनुष्य को पशुता की ओर ले जा रहा है। जीवन का लक्ष्य केवल शरीर के सुख साधन एकत्र करना बन गया है। जिसके परिणाम स्वरूप सर्वत्र ईर्ष्या द्वेष-युद्ध-घृणा पनप रहे हैं।

'धर्म' जो जीवन का मार्ग दर्शक था, मज़हबों के कारण बुद्धिजीवी वर्ग की घृणा का पात्र बन गया है। मनुष्यों के द्वारा स्वार्थ पूर्ति के लिए भटकाने वाले "अज्ञान-मार्ग" मज़हब के रूप में धर्म के नाम पर फैले तो लोग धर्म के सच्चे स्वरूप को भूलते गये और धर्म को छोड़ने से अधर्म मन मस्तिष्क पर अधिकार कर बैठा।

आज की सबसे बड़ी आवश्यकता संसार को धर्म और मज़हब का भेद समझाने की है। "धर्म" अमृत है तो "मजहब" विष। "धर्म" प्रकाश है तो मज़हब अंधकार। "धर्म" जीवन है तो मज़हब "मृत्यु"।

प्रस्तुत पुस्तक में आर्य समाज की धर्म सम्बन्धी आधारभूत मान्यताओं का सुलझा विश्लेषण आर्य जगत् के जाने माने कार्यकर्ता श्री ओम्प्रकाश त्यागी ने जिस सुन्दरता से किया है उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा है। उनके मन में आर्य समाज का संदेश फैलाने की जो भावना है वह विरलों में ही मिलेगी।

"जन-ज्ञान-प्रकाशन" ने "धर्म चिन्तन" प्रकाशित कर एक बड़ी कमी को पूरा किया है। वैसे भी 'जन-ज्ञान' द्वारा आर्य समाज और महर्षि दयानन्द की लक्ष्य पूर्ति के लिए जो उत्साह पूर्ण कार्य किया जा रहा है, और थोड़े से ही समय में साहित्य द्वारा इसने जो सेवा की है उस पर प्रत्येक आर्य समाज का सदस्य गर्व कर सकता है।

ज्योति "धर्म" की अंधकार में जले, प्रकाश फैले और अंधेरा दूर हो। मनुष्य मनुष्य बन प्रभु के बताए मार्ग पर चले। यह मेरी इच्छा है। ज्योतिर्मय प्रेरणा ही धरती को स्वर्ग बना सकती है।

छोटे-बड़े सभी "धर्म-चिन्तन" से धर्म का मर्म समझें........

मंत्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
रामलीला मैदान नई दिल्ली

शुभ कामनाओं सहित
राम गोपाल शाल वाले
संसद् सदस्य

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक जिसके विषय में कुछ पंक्तियाँ लिखने बैठा हूँ, 'धर्म-चिन्तन' है। इसके लेखक श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी संसद् सदस्य हैं। श्री त्यागी जी का घनिष्ठ सम्बन्ध आर्य समाज जैसी प्रसिद्ध धार्मिक संस्था से रहा है। विविध प्रवृत्तियों में त्यागी जी ने अपना योग दान दिया है और कुशलता-पूर्वक कार्य किया है। युवक आन्दोलन जिसका ही रूप आर्य वीर दल है इसका संचालन श्री त्यागी जी ने ही किया है। जहाँ उनसे इस आन्दोलन को प्रगति मिली, जीवन मिला और अनेक कार्यों में सफलता मिली वहाँ इससे उनके अनुभव में अधिक वृद्धि हुई। पुस्तक के लेखक को जहां शारीरिकोन्नति करने कराने में अति प्रीति रही वहाँ सामाजिक और धार्मिक उन्नति के मार्ग में भी उसने अपना स्थान उसी प्रकार रखा। भगवान् दयानन्द के सूत्र को उसने अपने सामने रखा।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है इस पुस्तक के लेखक ने अपने जीवन में कथनी की अपेक्षा करनी पर अधिक बल दिया है। श्री त्यागी जी का एक यह भी गुण रहा है कि वे जिसके भी मित्र रहे सच्चे मित्र रहे और इसको उन्होंने दृढ़ता से निभाया। वे एक विश्वसनीय मित्र कहे जा सकते हैं। इन गुणों की कसौटी तब होती है जब कठिनाइयों का सामना होता है। अनेकों कठिनाइयों के आने पर भी उन्होंने अपने इन गुणों को कभी नहीं त्यागा है। जबकि उनके नाम के साथ त्यागी शब्द लगा है।

श्री त्यागी जी धार्मिक विषयों के चिन्तन में भी रस लेते हैं। धर्म के विविध बिन्दुओं और जगत् में तत्सम्बन्धी व्यवहारों पर विचार करने का वे समय निकालते हैं। यह उनका विचार का अपना ढंग है। वैसे तो वे जहाँ आर्य वीर दल के महा सेनानी रहे और हैं वहाँ धर्मोपदेशक भी हैं। भारत एवं उसके बाहर अफ्रीका आदि देशान्तरों में भी उन्होंने धर्म प्रचार का कार्य किया है और करते भी हैं। परन्तु धार्मिक विषयों पर विचार करना एक पृथक् वस्तु है। धर्म के विविध विषयों पर उनके विचार का ही परिणाम यह पुस्तक धर्म-चिन्तन है।

विद्यार्थी जीवन आजकल बहुत ही अस्तव्यस्त और नास्तिकता एवं भौतिकता के कगार पर खड़ा है। उनको देखते हुए और युवक संघटन अपना

प्रिय विषय होते हुए लेखक ने वैसा ही ढंग अपनी पुस्तक में धर्म-चिन्तन को अन्यों के चिन्तन का विषय बनाने के लिए अपनाया है। इस शैली से विद्यार्थिवर्ग और सर्वसाधारण दोनों को ही लाभ होगा, और विषय सरलता से हृदयंगम होगा।

वर्तमान युग यद्यपि विचारकों की दृष्टि में विज्ञान का युग कहा जाता है परन्तु उसकी प्रिय संगिनी राजनीति ने इसे रोटी-कपड़ा और उच्छृंखलता का युग बना दिया है। रोटी, कपड़ा और जीविका की पूर्ति की आवश्यकता सभी कालों में रही है और रहेगी परन्तु ये ही सब कुछ है और इनके लिए मानव अपनी मानवता को छोड़ अनुशासनहीन और उच्छृंखल बन जावे—यह कभी भी उचित नहीं समझा गया। गरीबी और अमीरी दोनों ही भारत में रहे परन्तु इनकी कभी मुठभेड़ नहीं हुई। जबकि विदेशों में ये रक्तमयी क्रान्ति के कारण बने। इसका प्रधान कारण क्या है? उत्तर होगा कि यह प्रधान कारण भारत और विदेशों की सभ्यता के अन्तर में निहित है। संसार में मनुष्य को रोटी, कपड़े और जीविका की आवश्यकता है परन्तु ये ही सब कुछ नहीं है। इनके प्राप्त होने पर भी इनके उपयोग में अनुशासन की आवश्यकता होती है। वह अनुशासन केवल धर्म से ही प्राप्त हो सकता है रोटी-कपड़े जीविका के घोष और भौतिकता इस अनुशासन को नहीं दे सकते हैं।

मानव प्राणी पुरुष है। पुरुष के अपने चार प्रयोजन एवं उद्देश्य है। वे हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चारों की प्राप्ति पुरुष का अपना प्रयोजन है। परन्तु इन चारों में धर्म साथ लगा है। कारण यह है कि धर्म एक ऐसा अनुशासन है जिसकी सर्वत्र आवश्यकता है। धर्मपूर्वक अर्थ, धर्मपूर्वक काम और धर्मपूर्वक मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिए। धर्म को छोड़कर किसी की भी सिद्धि नहीं हो सकती है। मनुष्य अर्थ का दास बनकर, कामी बनकर शान्ति और सुख को नहीं प्राप्त कर सकता है। मोक्ष तो किसी भी प्रकार बिना धर्म के प्राप्त हो ही नहीं सकता है। धर्म जीवन में अनुशासन सिखाता है, समाज में और राष्ट्र में अनुशासन सिखाता है, कर्त्तव्य और अधिकार के सन्तुलन में अनुशासन सिखाता है और अनुशासन सिखाता है भोग तथा अपवर्ग में। इसी कारण से ऋषियों ने कहा है कि **'धर्मो रक्षति रक्षितः'**।

इस वैज्ञानिक युग की चका चौंध को देखकर लोगों की यह धारणा बन

गई है कि धर्म की अब कोई आवश्यकता ही नहीं। विज्ञान ही समस्त समस्याओं का समाधान करेगा। विज्ञान की इस अभिवृद्धि के साथ भौतिकवाद की भी अभिवृद्धि हो रही है। लोग यह समझते हैं कि विज्ञान इतने साधन उत्पन्न कर देगा कि समस्त आवश्यकतायें अपने आप पूर्ण हो जावेंगी और किसी प्रकार की कोई भी कमी नहीं रह जावेगी। इससे समाज का चित्र ही बदल जावेगा। विज्ञान का हामी धर्म, आत्मा और परमात्मा को तिलांजलि देने में अग्रसर है। वह कहता है कि मानव ने प्रकृति पर आधिपत्य कर लिया है और नित्य नये अन्वेषणों से विज्ञान जगत् पर छा रहा है। परन्तु वह भूल जाता है कि प्रकृति पर आधिपत्य आखिरकार मनुष्य के मस्तिष्क ने किया है न कि प्रकृति ने स्वयं आधिपत्य किया है। उसे यह भी तो विचारना चाहिए कि उसके इस कथन में ही विरोध है। मानव मस्तिष्क ने प्रकृति पर आधिपत्य किया है। मानव एक आत्मा है। अतः वह आत्मा शक्तिशाली हुई जिसने प्रकृति पर अपना आधिपत्य जमाया है—न कि प्रकृति। इसलिए कहना पड़ेगा कि यह मानव की आत्मा है जो प्रकृति से भी उच्च है। विज्ञान समाज और मानव की समस्याओं के सुलझाने के लिए साधन उत्पन्न करता है परन्तु उनके प्रयोग और अप्रयोग का विवेक नहीं देता है। वह शक्ति तो देता है परन्तु उसके प्रयोग का ज्ञान एवं अनुशासन नहीं देता है। यह अनुशासन तो केवल धर्म से आया करता है। वस्तुतः अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि विज्ञान से नहीं धर्म से होती है। विज्ञान साधन है पर साध्य नहीं, अधिकार है परन्तु कर्त्तव्य नहीं। विज्ञान को धर्मपूर्वक प्रयोग में लाने में ही मानव का कल्याण है।

मानव केवल रोटी खाकर, कपड़े पहन कर और पानी पीकर ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता है। उसे जब ये चीजें उपलब्ध हो जाती हैं तब वह इनसे अतिरिक्त का भी चिन्तन करता है। वह अपने समक्ष उपस्थित इस विश्व को देखता है और इसकी तह में बैठना चाहता है। वह स्वयं इन प्रश्नों को करने लगता है कि यह विश्व क्या है? यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और कहाँ से आया है? मैं क्या हूँ? कहाँ से आया हूँ? और कहाँ जाऊँगा? जीवन क्या है? और मृत्यु क्या है? वृद्धावस्था यौवन को क्यों छीनती है। मृत्यु जीवन को क्यों समाप्त करती है और विपत्ति सम्पत्ति को क्यों आ घेरती है। जगत् में सुखी से सुखी मानव को ये दुःख की चपेटें क्यों लगती

हैं ? ये प्रश्न जो हैं विचार करने के लिए बाध्य कर देते हैं। मानव इन प्रश्नों का जितना ही विचार करता है और समाधान खोजता है उतना ही वह धर्म की तरफ आता है। इन प्रश्नों का वास्तविक समाधान धर्म से ही होता है। जगत् की रचना की समस्याओं का समाधान पदार्थधर्म से होता है। पदार्थ प्रकृति, आत्मा और परमात्मा हैं। पदार्थ के चिन्तन से धर्म का स्वरूप जाना जाता है। यही कारण है कि धर्म की चिन्तन करने वाले शास्त्र वैशेषिक ने पदार्थधर्म का संग्रह और चिन्तन किया है।

वर्तमान समय में धर्म के नाम पर अनेक धर्म प्रचलित हैं। परन्तु सच्चा धर्म वही है जो सृष्टि के नियमों के विरुद्ध न हो तथा तत्सम्बन्धी विज्ञान से समन्वय खाता हो। सृष्टि नियम के प्रतिकूल धर्म धर्म नहीं है। वे केवल विश्वास है जो वस्तुतः स्वयं में अन्धविश्वास हैं। केवल वैदिक धर्म ही एक ऐसा सच्चा धर्म है जो इस कसौटी पर सर्वथा ठीक उतरता है। उसी के अपनाने में मानवता का कल्याण है।

इस "धर्म-चिन्तन" पुस्तक में धर्म के ऐसे ही ज्वलन्त मुद्दों पर चिन्तन किया गया है और इस चिन्तन से दूसरों को चिन्तन करने को प्रेरित किया गया है। यह धर्म चिन्तन केवल लेखक का ही चिन्तन न रहकर सभी पाठकों का चिन्तन बने इसलिए लेखक ने इसे लिखा और 'जन-ज्ञान प्रकाशन' ने प्रकाशित किया है। लोग इसे अपनावें, इसका प्रचार और प्रसार हो जिससे लेखक का प्रयत्न सफल हो। मेरी यही इच्छा है।

महर्षि दयानन्द भवन
रामलीला मैदान, नई दिल्ली १ —**वैद्यनाथ शास्त्री**
दिनांक १५ अगस्त १९७०

धर्म और मज़हब में अन्तर

धर्म के शास्त्रीय लक्षणों तथा अर्थों और मज़हब के अर्थों से विदित है कि धर्म और मज़हब समानार्थक नहीं हैं और न ही धर्म ईमान या विश्वास का पर्याय है।

२. धर्म क्रियात्मक वस्तु है और मज़हब विश्वासात्मक।

३. धर्म मनुष्य के स्वाभावानुकूल अथवा मानवी प्रकृति होने के कारण स्वाभाविक है और उसका आधार ईश्वरीय अथवा सृष्टि नियम है। परन्तु मज़हब मनुष्य कृत होने से अप्राकृतिक अथवा अस्वाभाविक है। मज़हबों का अनेक व भिन्न-भिन्न तथा परस्पर विरोधी होना उसके मनुष्यकृत अथवा बनावटी होने का प्रमाण है।

४. अन्य मानवी विशेषणों की भाँति सामान्य धर्म भी मनुष्य मात्र का एक ही है। इसलिए वह सार्वजनिक मानवी धर्म है जैसे मनु जी के बतलाए हुए **'धृति क्षमादि'** धर्म के लक्षण मनुष्यमात्र के लिए समान हैं। उनमें अपवाद भले ही कोई करे, परन्तु कोई भी सभ्य मनुष्य उनका विरोधी नहीं है। किन्तु मज़हब अनेक हैं और प्रत्येक मज़हब उसके अनुयायियों के-अतिरिक्त दूसरों के लिए अमान्य और अग्राह्य है। इसलिए वह सार्वजनिक नहीं है। हां! मज़हबों में भी कुछ अंश धर्म का अथवा धर्मानुकूल है और उस ही के कारण उनका भी कुछ मान बना हुआ है।

५. धर्म सदाचार रूप है अतः धर्मात्मा होने के लिये सदाचारी होना अनिवार्य है। परन्तु मज़हबी अथवा पन्थाई होने के लिये सदाचारी होना आवश्यक नहीं है। अर्थात् जिस तरह धर्म के साथ सदाचार का कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि किसी मज़हब का अनुयायी न होने पर भी मनुष्य सदाचारी (धर्मात्मा) बन सकता है। परन्तु आचार सम्पन्न होने पर भी कोई मनुष्य उस वक्त तक मज़हबी अथवा पन्थाई नहीं बन सकता जब तक कि मज़हब के मन्तव्यों पर ईमान अथवा विश्वास नहीं लाता। जैसे कि चाहे कोई कितना ही सच्चा ईश्वरोपासक और उच्च कोटि का ही सदाचारी क्यों न हो वह जब तक हज़रत ईसा और अञ्जील तथा हज़रत मोहम्मद और कुराने शरीफ़ पर ईमान नहीं लाता तब तक ईसाई और मुसलमान नहीं बन सकता।

६. धर्म ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है अथवा धर्म अर्थात् धार्मिक गुणों और कर्मों के धारण करने से ही मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त करके मनुष्य

कहलाने का अधिकारी बनता है। दूसरे शब्दों में धर्म और मनुष्यत्व पर्याय है। क्योंकि धर्म को धारण करना ही मनुष्यत्व है। कहा भी है—

'आहार निद्राभयमैथुनञ्च, सामान्यमेतत्पशु भिर्नराणाम्।
धर्मोहितेषामधिको विशेषो, धर्मेणहीनः पशुभिः समानः॥'

अर्थात् खाना, सोना, डरना और सन्तान उत्पन्न करना आदि कर्म मनुष्यों और पशुओं में एक समान हैं। केवल धर्म ही मनुष्य में विशेष है जो कि मनुष्य को मनुष्य बनाता है। धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान है। परन्तु मजहब मनुष्य को केवल मजहबी अथवा पन्थाई और अन्धविश्वासी बनाता है। दूसरे शब्दों में मजहब के मौलिक मन्तव्यों पर ईमान लाने से मनुष्य केवल मजहब का अनुयायी ईसाई मुसलमान आदि बनता है न कि धर्मात्मा या सदाचारी।

७. धर्म मनुष्य का ईश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़ता है। और उसको मोक्ष प्राप्ति के निमित्त धर्मात्मा अथवा सदाचारी बनना अनिवार्य बतलाता है। यथा

"यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः"

परन्तु मजहब मुक्ति के लिए मजहबी अथवा पन्थाई बनना अनिवार्य बताता है। और नजात के लिए सदाचार को अनावश्यक ठहराता है, या यूं समझिये कि जहां धर्म उच्च कोटि का मनुष्य अथवा देवता बनने और जीवन मुक्त तथा विदेह मुक्त होने के लिए ज्ञानपूर्वक सदाचार को ही सर्वोपरि साधन बताता है वहां मजहब नजात के लिए ज्ञान और सदाचार को अनावश्यक और निरर्थक ठहराता है। और केवल मजहबी अथवा पन्थाई बनने को बाधित करता है। उदाहरण के लिए सही बुखारी की इस हदीस को उद्धृत किया जा सकता है।

मिनकाला ला इल्लुला फदखलु नजतनाः व इन्नाजनाः व इन सरक़ाः।
अर्थात् ला इला इल्ल इल्ला कहने वाले मुसलमान बहिश्त में जायेंगे चाहे वह व्यभिचारी और चोर हों। इसी ईमान अथवा विश्वास से प्रेरित होकर स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली साहब ने एक बार यह कहा था कि "महात्मा गांधी कैरेक्टर Character (सदाचार) की दृष्टि से बहुत ऊंचे महात्मा हैं। परन्तु मुझे अफसोस है कि वह दोजख में जायेंगे, क्योंकि वह मुसलमान नहीं हैं" और उन्हें दोज़ख के अजाब से बचाने के लिए मक्का शरीफ में उनके

मुसलमान होने के लिये, उन्होंने प्रार्थना भी की थी।

८. धर्म में बाहर के चिह्नों का कोई स्थान नहीं। क्योंकि धर्म लिंगात्मक नहीं है। यथा— **न लिंगं धर्मकारणम्**

अर्थात् लिंग धर्म का कारण नहीं है। परन्तु मजहब के लिये बाहरी चिह्नों का रखना अनिवार्य है।

९. धर्म मनुष्य को पुरुषार्थी बनाता है क्योंकि वह ज्ञानपूर्वक सत्याचरण से ही अभ्युदय और मोक्ष प्राप्ति की शिक्षा देता है। परन्तु मजहब मनुष्य को आलस्य का पाठ पढ़ाता है। क्योंकि वह मजहब के मन्तव्यों को मान लेने मात्र से ही नजात को मिलना मानता है।

१०. धर्म मनुष्य का ईश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़कर मनुष्य को स्वतन्त्र और आत्मावलम्बी बनाता है क्योंकि वह मनुष्य और ईश्वर के बीच में किसी मध्यस्थ या एजेंट की जरूरत नहीं बताता। किन्तु अपने पुरुषार्थ से ही अभ्युदय और मुक्ति का मिलना मानता है। परन्तु मजहब मनुष्य को परतन्त्र और दूसरों का आश्रित बनाता है। क्योंकि वह मजहब के प्रवर्तक की सिफारिश के बिना मुक्ति का मिलना नहीं मानता।

११. धर्म दूसरों के हितों, स्वत्वों, और प्राणों की रक्षा के लिए मनुष्य को अपनी कुरबानी करनी सिखाता है। परन्तु मजहब मनुष्य को अपने हित के लिए पशुओं और मनुष्यों तक की हिंसा रूप कुरबानी का उपदेश करता है।

१२. धर्म मनुष्य को प्राणी मात्र के साथ प्रेम करना सिखलाता है परन्तु मजहब प्राणियों के मांसाहार तथा दूसरे मजहब वालों से द्वेष का पाठ पढ़ाता है।

१३. धर्म मनुष्य जाति को मनुष्यत्व के नाते से एक प्रकार के सार्वजनिक आचारों और विचारों द्वारा एक केन्द्र पर केन्द्रित करके भेदभाव और विरोध को मिटाता तथा एकता का पाठ पढ़ाता है। परन्तु मजहब अथवा मत-मतान्तर अपने भिन्न-भिन्न मन्तव्यों तथा कर्त्तव्यों के कारण अपने पृथक्-पृथक् जत्थे बनाकर भेदभाव और विरोध को बढ़ाते व एकता को मिटाते हैं।

१४. धर्म एकमात्र ईश्वर की पूजा सिखलाता और मजहब मनुष्य पूजा फैलाते हैं, इत्यादि इत्यादि।

विषय-सूची

१. धर्म और ईश्वर की महिमा	१७
२. धर्म का महत्व	१६
३. धर्म का स्वरूप	२४
४. धर्म और राजनीति	३२
५. धर्म और विज्ञान	३६
६. पूजा-पद्धति	४२
७. धर्म का आदि स्रोत	५०
८. धर्म और विश्वशांति	५७
९. धर्म और मानसिक शांति	६२
१०. संसार क्या है ?	६८
११. किसने यह ब्रह्माण्ड बनाया ?	७१
१२. ईश्वर को किसने बनाया ?	७६
१३. यह ब्रह्माण्ड क्यों बनाया ?	८०
१४. ईश्वर ने विश्व रचना कैसे की ?	८४
१५. ईश्वर का स्वरूप	६०
१६. ईश्वर कहाँ है ?	६४
१७. ईश्वर के गुण और उसका स्वरूप	१००
१८. ईश्वर का न्याय	१०४
१९. स्तुति, प्रार्थना, उपासना	११०
२०. मैं कौन हूँ ?	११५
२१. अपने को कैसे जानें ?	१२३
२२. मृत्यु क्या है ?	१२८
२३. अधिकार और कर्त्तव्य	१३५

१

धर्म और ईश्वर की महिमा

प्रिय सहयोगियो !

हम सब आज इसलिए एकत्र हुए हैं कि इस संस्था के विद्यार्थियों में बढ़ रही अधार्मिकता व नास्तिकता की भावना पर विचार करें। वस्तुतः हम सब के लिए यह गम्भीर चिन्ता का विषय बनी हुई है। आर्यसमाज ने इस संस्था को एक विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित किया है। इसके द्वारा विद्यार्थियों का जहाँ शारीरिक व बौद्धिक विकास हो, वहाँ उनमें धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था व श्रद्धा की भावना सदा जागृत रहे। दुर्भाग्यवश स्थिति सर्वथा इसके विपरीत है। फलतः संस्था के संस्थापकों की आशा धूल में मिल रही है। सचमुच उनके प्रति हम विश्वासघात के अपराधी बन रहे हैं। जरा सोचो, रात-दिन परिश्रम करके घर-घर झोली पसार स्कूल के संचालन के लिए ये कार्य कर्त्ता एक-एक पैसा जमा करने के लिए दौड़-धूप करते हैं। दूसरी ओर हम किस प्रकार उनके परिश्रम पर पानी फेर रहे हैं। संस्था का आचार्य होने के हेतु इस अपराध का मुख्य भागी मैं ही हूँ। मेरी आत्मा नित्य मुझे इस भूल के लिये लगातार कोसता रहता है। इसी समस्या पर पूर्णतः विचार करने के लिये मैंने आप सब अध्यापकों को आमन्त्रित किया है। मेरी एकमात्र कामना है, आप सब इस दिशा में मेरा मार्ग-दर्शन करें।

अध्यापक—आचार्य महोदय ! क्षमा कीजियेगा कटु सत्य कहने के लिये। मैं जानना चाहता हूँ कि हम लोगों को इस स्कूल के संस्थापक आर्यसमाज के सिद्धान्तों की पूर्ति हेतु भेड़-बकरियों की भाँति चलना है या बुद्धिमानों की भाँति सत्य ज्ञान का प्रचार करना है। आज विज्ञान का युग है। धर्म और

ईश्वर सृष्टि के आदि काल के भोले अज्ञानी लोगों के मस्तिष्क की उपज है। उनके मस्तिष्क पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, वर्षा आदि के रहस्य को जब न समझ सके तो उन्होंने धर्म और ईश्वर को जन्म देकर अपना संतोष कर लिया। इनके रहस्यों को जानने की अपेक्षा—"ईश्वर की रचना ईश्वर ही जाने" कहकर अपनी बुद्धि पर सदैव के लिये ताला लगा दिया। आज सौभाग्य से विज्ञान की प्रगति ने बुद्धि को अज्ञान के ताले से उन्मुक्त कर दिया है। क्या आप विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर पुनः यह ताला लगाना चाहते हैं। विद्यार्थियों में व्याप्त जिस अधार्मिकता व नास्तिकता से आप चिन्तित हैं वह चिन्ता का विषय न होकर हर्ष का विषय है। यह विद्यार्थियों की प्रगतिशीलता का ही सूचक है।

इस अध्यापक की बातों से बैठक में सन्नाटा छा गया और आचार्य महोदय के चेहरे की हवाइयाँ उड़ गईं। कुछ देर सन्नाटे के पश्चात् एक अन्य अध्यापक ने गम्भीर व रोष भरे स्वर में बोलना प्रारम्भ किया—

दूसरा अध्यापक—साथियो ! मास्टर भोगीलाल के धर्म-ईश्वर विरोधी विचारों को आप सब ने सुना। उनके यह विचार नये नहीं हैं, अपितु अपनी अधार्मिकता व नास्तिकता के लिये सर्वविदित हैं। आप कट्टर साम्यवादी और भौतिकवाद तथा भोगवाद में ही विश्वास रखने वाले हैं। दूसरी शताब्दी में वह व्यक्ति मार्क्स के अन्ध अनुयायी हैं उनकी भेड़ों में शामिल हो अपनी बुद्धि पर ताला लगा बैठे हैं। धर्म और ईश्वर को उन्हीं की आँखों से देखते हैं। पर वास्तविक स्थिति यह है कि मा० भोगीलाल को धर्म और ईश्वर का तनिक भी ज्ञान नहीं है ; नाही उन्होंने कभी किसी धार्मिक ग्रन्थ को पढ़ा है। उन्होंने धर्म और ईश्वर को अज्ञानियों के मस्तिष्क की उपज कहा है, परन्तु उन्हें शायद यह पता नहीं है कि भारत के ऋषि-मुनियों ने अध्यात्मिक विषयों के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण उपस्थित किये हैं उनके सन्मुख समस्त संसार का विद्वन्मंडल नतमस्तक है। यह प्राचीन चिन्तन आज भी विद्वानों के लिये नया है।

तीसरा अध्यापक—श्री बुद्धिप्रकाश—आचार्य महोदय ! नैतिक दृष्टि से हमे स्वीकार करना होगा कि स्कूल की स्थापना के पीछे संस्थापकों की जो भावना व उद्देश्य है उसका सम्मान कर उसे क्रियात्मक रूप देना हम सब का प्रमुख कर्तव्य है। हम मे से जो साथी संस्था के उद्देश्य से सहमत नहीं है उसे

ईमानदारी से इस संस्था से पृथक् हो जाना चाहिये । साथ ही यह भी सत्य है कि हम लोग छात्रों को डंडे के बल पर भेड़-बकरियों की तरह किसी विशिष्ट दिशा में हाँक सकेंगे, यह सन्दिग्घ है । आज के इस वैज्ञानिक युग में छात्र वही स्वीकार करता है जो युक्ति पर आधारित हो और हृदय व मस्तिष्क को प्रभावित कर सके । फलतः धर्म और ईश्वर की सत्ता को युक्तियों के बल पर यदि छात्रों के मस्तिष्क तक पहुँचाया जा सके तो ये अवश्य उसे अंगीकार करेंगे । दुर्भाग्यवश इस स्कूल में एक भी व्यक्ति नहीं जो इस उद्देश्य की पूर्ति कर सके ।

चौथा अध्यापक—श्री ज्ञानप्रकाश—मैं अपने साथी भाई श्री बुद्धिप्रकाश के विचारों का समर्थन करता हुआ सुझाव देता हूँ कि आजकल हमारे नगर में एक उच्च कोटि के विद्वान्, महात्मा पधारे हुए हैं । वेदशास्त्रों के अतिरिक्त उन्हें आधुनिक विज्ञान का भी अच्छा ज्ञान है ; उनके प्रवचन तर्क और युक्ति संगत होते हैं । यदि नित्य प्रातः प्रार्थना-सभा में उनके प्रवचन का आयोजन किया जाय तो लाभप्रद होगा । साथ ही यदि महात्मा जी विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान भी करते चलें तो छात्रों की रुचि तीव्र हो जाएगी ।

अध्यापक ज्ञानप्रकाश के इस सुझाव से सब अध्यापक सहमत हो गये । निश्चय हुआ कि आचार्य महोदय महात्मा के प्रवचनों का अविलम्ब प्रबन्ध कर देंगे ।

२

धर्म का महत्त्व

प्रार्थना सभा में प्रार्थना के पश्चात् नित्य प्रातः महात्माजी का प्रवचन हुआ करेगा—इस आदेश को पाकर विद्यार्थियों में बेचैनी थी और वे भी आचार्य महोदय की आलोचना कर रहे थे । नास्तिक अध्यापक श्री भोगीलाल ने विद्यार्थियों की इस बेचैनी व आलोचना को अपने अनुकूल पाकर महात्मा

जी के प्रवचनों को असफल बनाने का निश्चय कर लिया। कुछ समझदार छात्रों को फुसलाकर एक षड़यन्त्र की रचना भी की।

ठीक समय पर महात्मा जी प्रार्थना-सभा में उपस्थित हो गये। उन्हें देखते ही कुछ छात्रों ने हँसना प्रारम्भ कर दिया। हँसी के पीछे उनकी यही भावना छिपी थी कि ज्ञान तथा समझदारी की बात तो एक अत्यन्त आधुनिक वेषभूषा अलंकृत व्यक्ति ही कर सकता है। औघड़ जटा-जूटधारी साधु बाबा का ज्ञान से भला क्या सम्बन्ध! ये लोग पिछड़ी दुनिया के व्यक्ति हैं। पुरानी बातों की ही रट लगाते फिरते हैं। आधुनिक ज्ञान से तो यह कोसों दूर हैं। इस पृष्ठभूमि के साथ की हँसी छात्रों द्वारा महात्मा जी की खिल्ली उड़ाना स्वभाविक ही था।

प्रार्थना के पश्चात् महात्मा जी का परिचय देते हुये जब आचार्य महोदय ने कहा कि पूज्य महात्मा योगानन्द जी वेद-शास्त्रों के विद्वान् होने के अतिरिक्त एम०-एस० सी० हैं तथा एक डिग्री कालेज के भूतपूर्व आचार्य हैं तो सब छात्र अवाक् रह गये, मन ही मन अपनी हँसी पर पश्चात्ताप करने लगे। परिचय के पश्चात् महात्मा जी ने बड़े मधुर स्वर में वेद मन्त्रों का पाठ कर अपना प्रवचन इन शब्दों के साथ किया—

आदरणीय गुरु वृन्द, तथा भारत की भावी आशाओ! मैं आप के सम्मुख उपदेश करने नहीं आया, अपितु ज्ञान-चर्चा करने आया हूँ। अपने दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर जीवन के वह रहस्य बतलाने आया हूँ जिनके द्वारा प्रत्येक मानव इस संसार में सुख, शान्ति व सफलता प्राप्त कर सकता है। आप में से यदि कोई विद्यार्थी ऐसा हो जो अपने जीवन में सुख, शान्ति व सफलता न चाहता हो तो वह हाथ उठादे।

एक विद्यार्थी—महात्मा जी! संसार में चींउटी से लेकर मानव तक एक भी प्राणी ऐसा नहीं जो सुख, शान्ति व सफलता न चाहता हो।

महात्मा जी—जब सभी सुख, शान्ति व सफलता चाहते हैं तो फिर लोगों को दुःख, अशान्ति व असफलता क्यों मिलती है?

दूसरा विद्यार्थी—महात्मा जी! ये चीजें तो न चाहते हुए भी अनायास स्वतः प्राप्त होती हैं।

महात्मा जी—स्वतः नहीं आतीं अपितु जो इन्हें आमन्त्रित करता है उसी के पास पहुँचती हैं अन्य के पास नहीं।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! क्या संसार में कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो दुःख अशान्ति व असफलता को आमन्त्रित करे।

महात्मा जी—वस्तुतः संसार में अधिकांश व्यक्ति ऐसे ही हैं, पर दुर्भाग्य और अज्ञानवश वह स्वयं यह नहीं जान पाते कि वे ऐसा ही कर रहे हैं ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! भला यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति किसी को आमन्त्रित करे और उसे इस बात का ज्ञान तक न हो।

महात्मा जी—प्रिय बच्चो ! यदि आप गुड़ की एक डली कमरे में डाल दो तो चींटियाँ आएंगी या नहीं ? यदि कोई आग या कुएँ में कूद पड़े तो मृत्यु उसके पास आएगी या नहीं ? यदि कोई विद्यार्थी पढ़ने के स्थान पर सदैव खेलता ही रहे तो परीक्षा में असफलता आएगी कि नहीं ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! बात आपकी सत्य है ; परन्तु इसे निमन्त्रण कैसे कहा जा सकता है ?

महात्मा जी—बच्चो ! निमन्त्रण देने के अनेक प्रकार हैं मानव अपनी अज्ञानतावश जान नहीं पातां परन्तु उसकी आँख तभी खुलती है जब निमंत्रित महमान सामने आकर खड़ा हो जाता है। महमान भी ऐसा जो फिर इच्छा-अनिच्छा, प्रत्येक प्रकार से अपना आतिथ्य करा ही लेता है। इस सम्बन्ध में विज्ञान के इस मूलभूत सिद्धान्त को याद रखें कि "कारण के बिना कार्य नहीं होता" फलतः बिना कारण दुःख, अशान्ति व असफलताएं भला कैसे आ जाएंगी ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे मनुष्य इस भावना को निमन्त्रण देने से मुक्ति पा सके ?

महात्मा जी—यही रहस्य तो मैं आज आपको बतलाने आया हूँ। पर वह तभी बतलाया जा सकता है जब आप सब की इच्छा हो, अन्यथा नहीं।

विद्यार्थी—सब छात्रों ने तत्काल एक स्वर से घोषणा की कि हम सब यह रहस्य जानना चाहते हैं ?

प्रवचन में विद्यार्थियों की इस प्रकार बढ़ रही रुचि को देखकर आचार्य मन ही मन हर्षित हो रहे थे, दूसरी ओर वह नास्तिक अध्यापक शर्म से भूमि में गड़ा जा रहा था।

महात्मा जी—विद्यार्थियो ! अज्ञान ही मानव के मार्ग में सब से बड़ी रुकावट है ; और यही समस्त दुःखों, अशान्तियों व असफलताओं का मूल है।

अतः सत्य ज्ञान की प्राप्ति और अज्ञानता की समाप्ति से ही मानव दुःख अशान्ति व असफलता से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

विद्यार्थी—हम सब विद्यार्थी स्कूल में तो ज्ञान प्राप्त करते ही रहते हैं ; फिर हम समय-समय पर इन शत्रुओं के फंदे में क्यों फँसते रहते हैं ?

महात्मा जी—आजकल स्कूल-कालेजों में दिया जाने वाला ज्ञान अधूरा है। इससे अज्ञानता का समूल विनाश होना सम्भव नहीं। इसमें विश्व के आधार ईश्वर, जीव और प्रकृति में से आप केवल जड़ प्रकृति का ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। जीवात्मा और ईश्वर के बारे में तो कोई चर्चा ही नहीं होती। ऐसी अवस्था में आप अज्ञानता से मुक्ति की कैसे आशा कर सकते हैं ? मानव आकाश पाताल की खोज तो करता फिरता है ; परन्तु अपने भीतर की खोज की ओर कभी ध्यान देता ही नहीं। अपनी खोज के बिना केवल संसार की खोज मानव को बल प्रदान तो कर देती है ; परन्तु दिशा और प्रकाश के बिना बल का प्रयोग करना पाशविक बल के सदृश ही होता है। अतः जब तक व्यक्ति निम्न प्रश्नों के उत्तर प्राप्त नहीं कर पाता तब तक उसे अपनी सही दिशा और प्रकाश रेखा का ज्ञान होना सम्भव ही नहीं। ये प्रश्न तीन हैं:— १—यह संसार क्या है ? इसे किसने क्यों और कैसे बनाया ? २—मैं कौन हूँ ? यहाँ क्यों आया हूँ ? मेरा लक्ष्य क्या है ? मेरा यहाँ अपना क्या है ? ३—कारणरूप इस जड़ प्रकृति और इसके द्वारा इस स्थूल ब्रह्माण्ड को बनाने वाला कौन है ? मेरा उसके साथ क्या सम्बन्ध है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! इन प्रश्नों का हम विद्यार्थियों से भला क्या सम्बन्ध है ? हमारी परीक्षाओं का तो इनसे कोई दूर का नाता भी नहीं है।

महात्मा—विद्यार्थी ही नहीं अपितु आबाल वृद्ध सभी से इनका सम्बन्ध है। इनके बिना सफलता व सुख मिलना बड़ा कठिन है। उदाहरण के लिए जब एक विद्यार्थी को यह ज्ञान ही नहीं होगा कि वह कौन है ? स्कूल में क्यों आया है ? उसका लक्ष्य क्या है ? स्कूल और अध्यापकों के साथ उसके क्या सम्बन्ध हैं ? तो क्या आप यह आशा करते हैं कि उसे अपने जीवन में कभी सफलता प्राप्त हो सकेगी ? बस यही अवस्था जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की है।

विद्यार्थी—महात्मा जी। हमें इन प्रश्नों का समाधान कैसे प्राप्त हो सकता है ?

महात्मा—धर्म का शिक्षण इन्हीं प्रश्नों का मुख्यतः उत्तर देता है। इसलिए यदि आप चाहते हैं कि जीवन में सुख, शान्ति व सफलता की प्राप्ति हो तो आप को धार्मिक शिक्षण अथवा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करना ही होगा।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! क्या विज्ञान के द्वारा हम इन प्रश्नों के उत्तर नहीं जान सकते ?

महात्मा—भोले विद्यार्थी ! धर्म और विज्ञान दो अलग वस्तु नहीं हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि भौतिक जगत् की खोज सम्बन्धी ज्ञान का नाम भौतिक विज्ञान है और आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी खोज का नाम अध्यात्म ज्ञान अथवा धर्म है ?

विद्यार्थी—क्या आप विज्ञान की भांति धर्म के समस्त सिद्धान्तों को युक्तियों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं ?

महात्मा—बुद्धि तथा युक्ति से सिद्ध न होने वाले ज्ञान को धर्म कहना ही भूल है ?

विद्यार्थी—वैज्ञानिक खोजों के लिए बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ बनी हुई हैं ; परन्तु अध्यात्मिक अन्वेषण के लिए कौन सी प्रयोगशाला है ?

महात्मा—इस आध्यात्मिक अन्वेषण के लिए हृदय ही बहुत बड़ी प्रयोगशाला है ; योगाभ्यास इसका साधन है और वेद-ज्ञान इसका मूलभूत आधार है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! धर्म के सम्बन्ध में आप के विचार हमें स्वप्न जैसे लगते हैं ; और इन पर विश्वास होना कठिन हो रहा है। धर्म के सम्बन्ध में अब तक हमारा यही विश्वास है कि धर्म विज्ञान विरोधी है, इसमें बुद्धि तथा युक्ति का कोई स्थान नहीं और इसका आधार एकमात्र अन्ध-विश्वास है। परन्तु आप की युक्तियाँ तो इसके सर्वथा विपरीत हैं।

महात्मा—आप की बातों में बहुत कुछ सत्यता है क्योंकि वर्तमान समय में धर्म के बाजार में, धर्म की आड़ में नकली धर्म अर्थात् मजहब चल रहे हैं ; जो किसी एक व्यक्ति ही के मस्तिष्क की उपज या आदेश हैं ; उनमें कुछ अच्छी बातें भी हैं ; परन्तु उनमें बुद्धि विरोधी ऐसी अनेक बातें हैं जो विज्ञान के साथ मेल नहीं खाती हैं। धर्म से मेरा तात्पर्य इन बुद्धि एवं विज्ञान विरोधी मजहबों से नहीं अपितु उस धर्म से है जो पूर्णतः तर्क, युक्ति और बुद्धि

पर स्थिर है।

विद्यार्थी—तो धर्म की यह व्याख्या आपकी अपनी कल्पना की उपज है या इसका कहीं अस्तित्व भी है ?

महात्मा—यह धर्म मेरा अपना कल्याण प्रसूत नहीं है। वैदिक धर्म साक्षात् तर्क, युक्ति और बुद्धि पर स्थित है। वह किसी एक व्यक्ति, परिस्थिति तथा समय की उपज न होकर विज्ञान की भाँति सर्वकालिक सर्व-कल्याणकारी सत्य के रूप में द्युतिमान् है।

विद्यार्थी—धर्म का सही स्वरूप व परिभाषा क्या है ?

महात्मा—अब समय अधिक हो गया है। आज इतना ही। यदि आप चाहें तो कल इसी विषय पर विचार करेंगे।

आचार्य—पूज्य महात्मा जी ! आपका कथन सर्वथा समुचित है। अब समय समाप्त हो गया है। अब कल पुनः इसी समय प्रवचन होगा।

महात्मा—कल प्रवचन होगा या नहीं यह आप पर नहीं अपितु विद्यार्थियों की इच्छा पर ही निर्भर करता है। इसलिए मैं विद्यार्थियों से ही जानना चाहता हूँ कि कल प्रवचन हो या नहीं ?

महात्मा जी की बात सुनकर समस्त छात्रों ने एक स्वर से कहा—"प्रवचन अवश्य होना चाहिए। महात्मा जी की सेवा में प्रार्थना है कि वह अपने प्रवचनों का क्रम तब तक चालू रखें जब तक इन समस्त प्रश्नों का समाधान न हो जाए। शान्ति पाठ के साथ आज का सत्संग समाप्त हुआ।

३

धर्म का स्वरूप

छात्रों में आज विशेष उत्साह था। अब प्रार्थना-सभा उनके लिये आकर्षण की वस्तु बन गयी थी। सब के मुख पर महात्माजी के तर्कपूर्ण प्रवचनों की प्रशंसा की चर्चा थी। नास्तिक अध्यापक ही बेचैन प्रतीत होता था और

अलग कोने में खड़ा कुछ विद्यार्थियों के साथ किसी षड्यन्त्र की रचना कर रहा था। घण्टी बजते ही सब छात्र और अध्यापक पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। प्रार्थना के पश्चात् महात्मा जी की ज्ञान-गंगा इस प्रकार प्रवाहित होने लगी।

महात्मा—छात्रो! कल आप धर्म का स्वरूप जानने के लिये उत्सुक थे जिससे मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह उत्सुकता स्वाभाविक है। इस समय धर्म के नाम पर जो कुछ चल रहा या हो रहा है उससे धर्म बदनाम हो चुका है, धर्म का नाम तक लेना आज पिछड़ेपन का प्रतीक बन गया है। धर्म के नाम पर भूतकाल में जितना खून-खराबा, जितनी लूट-मार, हत्यायें हुई हैं उनका वर्णन पढ़कर धर्म से घृणा हुए बिना नहीं रह सकती। यही कारण था कि कार्लमार्क्स जैसे विद्वानों ने धर्म और ईश्वर को पूंजीपतियों का षड्यन्त्र और लेनिन ने अफीम का नाम देकर त्याज्य घोषित कर दिया। इसमें दोष उनका नहीं अपितु ऐसे तथाकथित लोगों का है जो धर्म के नाम पर मत-मतान्तर का प्रचार करते रहे हैं उन्होंने खास ढंग की पूजा-पद्धति और किसी विशिष्ट पैगम्बर व ईश्वरपुत्र में विश्वास मात्र को धर्म बनाया हुआ था। जो व्यक्ति उनकी बात नहीं मानते थे उन्हें काफिर, पापी व खुदा के शत्रु घोषित कर कतल कर दिया जाता था। लूटना, कतल करने के विभिन्न प्रकार के रोमांचकारी अत्याचार, बच्चों का वध, स्त्रियों को पीडित, अपमानित करना वह अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे। ईश्वर उनके इन कुकर्मों से प्रसन्न हो उन्हें स्वर्ग ले जायगा ऐसा उनका विश्वास था। इस प्रकार उनका धर्म मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, गुरुद्वारों के अन्दर पूजा-पाठ तक सीमित कर दिया गया! इतिहास इन कुकृतियों से भरा पड़ा है। सचमुच आज तक धर्म के नाम पर यही सब कुछ होता रहा है।

वास्तव में धर्म मन्दिर, मस्जिद, गिरजा व गुरुद्वारों के अन्दर केवल पूजा-पाठ में नहीं अपितु इनके अतिरिक्त व्यक्ति के दैनिक जीवन में व्यापक रहना चाहिए। पूजा पाठ धर्म नहीं अपितु धर्म पालन में सहायक मात्र है केवल पूजा-पाठ को ही धर्म समझना भारी भूल है।

विद्यार्थी—महात्मा जी! मजहब और धर्म में क्या अन्तर है।

महात्मा - मजहब एक खास ढंग की पूजा-पद्धति और किसी विशेष महापुरुष के प्रति अटल विश्वास का नाम है, उधर धर्म मानव के व्यक्तिगत व पारिवारिक और सामाजिक जीवन को सुखी बनाने वाली एक अजस्र धारा

और अविचल निष्ठा का नाम है। उदाहरणार्थ मजहब की दृष्टि में वह व्यक्ति धार्मिक है जो उस मजहब में पूजा-पाठ नियमित रूप से करता है, चाहे, उसका आचरण कैसा ही क्यों न हो परन्तु धर्म इसके विपरीत उसी व्यक्ति को धार्मिक समझता है जो जीवन में प्रतिदिन धर्म का आचरण करता है अर्थात् जो सत्य व्यवहार करता है।

विद्यार्थी—आप की दृष्टि में धर्म की परिभाषा क्या है ?

महात्मा– धर्म उन कर्मों का नाम है जिनके करने से मानव की शारीरिक, व सामाजिक उन्नति हो, जिससे उसे प्रत्येक प्रकार का सुख, शान्ति व आनन्द प्राप्त हो, और मरने के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति हो।

विद्यार्थी—महात्मा जी यह परिभाषा आप की अपनी बनाई हुई है या धर्म-ग्रन्थों के अनुसार है !

महात्मा—विद्यार्थियो ! वैदिक धर्म के समस्त ग्रन्थों में यही परिभाषा है। यही कारण है वैदिक धर्म किसी विशेष पूजा-पाठ का नाम न होकर एक विशेष जीवन-धारा का नाम है। आपकी जानकारी के लिए ऋषि-महर्षियों द्वारा की गई धर्म की परिभाषा के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं—

यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

(वैशेषिक दर्शन १।१।२)

जिन कर्मों से इस लोक और परलोक का कल्याण होकर परमानन्द की प्राप्ति हो वही धर्म कहा जाता है।

धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

(महाभारत शान्तिपर्व)

जो धारण किया जाता है इसलिये वह धर्म कहा जाता है क्योंकि धर्म से ही प्रजा का धारण होता है। अतः जो धारण संयुक्त है वही निश्चय से धर्म है।

धृतिः क्षमा दमो ऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्" ॥

(मनु ६।९१)

अर्थात्—धैर्य, क्षमा, काम, क्रोधादि का दमन, चोरी न करना, पवित्रता,

आत्म संयम बुद्धि, ज्ञान, सत्य बोलना, क्रोध न करना आदि दस धर्म के लक्षण हैं।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

(मनु० २।१२)

धर्म जानने की चार कसौटियाँ हैं। सबसे प्रथम जो अपने आपके लिए प्रिय हो, उससे बड़ी श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण, इससे ऊँची जो धर्म शास्त्रों और स्मृतियों में कहा गया है और सबसे सक्रिय और ऊँची जो वेदानुकूल हो।

विद्यार्थी—धर्म की इन परिभाषाओं को देखते हुए तो धर्म से किसी का मत-भेद होना सम्भव नहीं ? फिर साम्यवादी बन्धु धर्म का विरोध क्यों करते हैं।

महात्मा—बेचारे अज्ञानवश ही ऐसा करते हैं। उन्हें अब तक मजहब के ही दर्शन हुए हैं धर्म के नहीं ! इसीलिये उनका विरोध स्वाभाविक है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! ऊपर लिखित परिभाषा में ईश्वर के मानने न मानने का कोई उल्लेख न होने से सिद्ध होता है कि एक नास्तिक भी धार्मिक बन सकता है।

महात्मा—हाँ, नास्तिक व्यक्ति भी धार्मिक बन सकता है, पर उसकी धार्मिकता आधार हीन होगी और कभी भी स्वार्थवश समाप्त हो सकती है। ईश्वर ही समस्त विद्याओं और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका मूलाधार है। ईश्वर को जाने बिना पूर्ण सत्य पर पहुँचना असम्भव है। अतः धर्म के सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान सत्य के आदि स्रोत प्रभु-दर्शन से ही सम्भव है।

विद्यार्थी—आपकी धर्म-परिभाषा के अनुसार धर्म के धारण करने अथवा धर्माचरण करने से प्रत्येक प्रकार का सुख व प्रगति प्राप्त होनी चाहिये, परन्तु बात इसके सर्वथा विपरीत देखने में आती है। भले व धार्मिक व्यक्ति सदा निर्धन व दुःखी ही देखने में आते हैं ऐसा क्यों ?

महात्मा—धार्मिक व्यक्ति कभी दुःखी होता ही नहीं वह तभी दुःखी होता है जब वह अपने धर्म का पालन नहीं कर पाता है। धर्म का पालन कोई सरल कार्य नहीं हैं ? अपने धर्म को पहचानना प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता में नहीं है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपने तो अब एक नई समस्या खड़ी कर दी कि धर्म को पहचानना सरल कार्य नहीं है यह कैसे ?

महात्मा—विद्यार्थियो ! जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का अपना स्वरूप व धर्म होता है। जब तक आप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के स्वरूप व धर्म को जानकर उसके अनुकूल आचरण नहीं करेंगे तब तक सफलता कैसे मिल सकती है? केवल मात्र शुभ कर्म करने से सफलता मिल जायगी, सो बात नहीं है। उदाहरण के लिए यदि गणित की परीक्षा में प्रश्न-पत्र का उत्तर न देकर आप वेद मन्त्र, कुरान की आयतें या बाईबिल के उपदेश लिख आये या एक किसान खेत में बीज बोने के समय सन्ध्या हवन करने लग जाए तो क्या आप ऐसी अवस्था में सफलता की आशा कर सकते हैं ? देखने में भले ही आप भला कर रहे है, परन्तु वह जीवन के धर्म का पालन न कर अधर्म व्यवहार ही कर रहा है। इसीलिए धर्म पर आचरण करने वाले का यह परम कर्त्तव्य है कि वह जिस क्षेत्र में कार्य कर रहा हैं उसके धर्म और स्वरूप को पहिचाने और लगन के साथ उसका पालन करे। फिर निश्चित रूप से सफलता उसके चरण चूमेगी।

विद्यार्थी—बहुधा धर्म के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि धर्म मरने के पश्चात् ही सुख शान्ति व मोक्ष देता है, वर्तमान जीवन में तो उसे त्याग तप-दुःख ही सहन करने पड़ते हैं।

महात्मा—जिन मूर्ख लोगों ने धर्म को नहीं समझा है वह ऐसा कहते हैं। अन्यथा जो धर्म वर्तमान जीवन को सुखी नहीं बना सकता, भला वह मरने के पश्चात् किस प्रकार सुख व मोक्ष प्रदान करेगा। सच्चे धर्म की पहिचान यही है कि वह धारण करते ही मानव को सुख, शान्ति व प्रगति प्रदान करता है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना धर्म पालन करने की बात तो नास्तिक व अधार्मिक लोग भी कहते हैं। यदि यही धर्म हो तब तो रूस-चीन वाले साम्यवादी भी धार्मिक हैं।

महात्मा—बच्चे ! जिस प्रकार गणित के क्षेत्र में यदि व्यक्ति उसके मौलिक नियम व गुर को जानता है फिर गणित की पहेलियों को सुलझाना उसके लिए बड़ा सरल हो जाता है, अन्यथा बड़ा कठिन ही है। इसी प्रकार व्यक्ति जब मानव धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को जान लेता है फिर उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन सिद्धान्तों को कसौटी पर कस कर अपने कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान सहज ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। बस धर्म के दस मौलिक

सिद्धान्त ही वह कसौटी हैं जिन पर धर्म-अधर्म को परखा जा सकता है। यही धर्म का स्वरूप है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! भले बुरे की पहचान तो हर व्यक्ति को स्वभावतः होती है इसमें धर्म की क्या आवश्यकता है ?

महात्मा—भले-बुरे की पहचान होते हुए भी मनुष्य का स्वार्थ जब उसे बुरे मार्ग की ओर खींचता है फिर उसे बुरे मार्ग पर जाने से धर्म के सिवाय कौन रोक सकता है। उदाहरण के लिए एक दुकानदार जब बेईमानी से अधिक धन प्राप्त होता देखता है तो फिर उसे इस प्रलोभन से रोकने की शक्ति किस में है ? वह धर्म का अंकुश ही है जो उसे कुमार्ग से रोकेगा।

विद्यार्थी—सरकार की दण्ड व्यवस्था उसे बुरे मार्ग से रोकेगी।

महात्मा—सरकार की दण्ड व्यवस्था तो तभी लागू होगी जब वह पकड़ा जायगा ?

विद्यार्थी—फिर धर्म उसे किस प्रकार रोकेगा ?

महात्मा—धर्म उसे यह प्रेरणा देने में समर्थ होगा कि बुरा कर्मकरने से अन्ततः उसकी आत्मा का पतन होगा। ईश्वर की दण्ड व्यवस्था उसे दण्डित करेगी। मरने के पश्चात् उसे अपने कर्मानुसार ही आयु, जाति व भोग प्राप्त होगा। ऐसा समझ लेने पर व्यक्ति स्वतः पाप करने से रुक जाएगा।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! जब शुभ कर्म करने का ही नाम धर्म है तो पूजा-पाठ करने और मन्दिर, मस्जिद व गुरुद्वारों की भी क्या आवश्यकता है ?

महात्मा—जिस प्रकार डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर आदि बननेके लिये स्कूल-कालेज और अध्यापकों की आवश्यकता होती है वैसे ही सत्संग द्वारा की गई मानसिक शुद्धि परमावश्यक है।

विद्यार्थी—यदि एक व्यक्ति शुभ कर्म करता रहे, तो उसे एक विशेष विधि से पूजा-पाठ की क्या अवश्यकता है ?

महात्मा—क्या बीज के बिन वृक्षा तथा ज्ञान के बिना कर्म की आप आशा कर सकते हैं ? जब पाप-पुण्य का ज्ञान ही नहीं होगा तो व्यक्ति पुण्य कैसे करेगा, यदि पाप-पुण्य का ज्ञान भी हो तो फिर पाप के प्रलोभन को छोड़कर पुण्य मनुष्य क्यों करे ? इसका उत्तर उसे कैसे प्राप्त होगा ?

विद्यार्थी—पाप-पुण्य का भेद तो मनुष्य धार्मिक-ग्रन्थों का स्वाध्यय करने से प्राप्त कर सकता है। फिर पूजा-पाठ करने की क्या आवश्यकता रह गई ?

महात्मा—बच्चो ! मनोविज्ञान के अनुसार उत्तम बातें सुनने, श्रेष्ठ ग्रन्थों का पाठ करने, शुभ विचारों का निरन्तर ध्यान व मनन करने, गुणी व्यक्तियों व महापुरुषों के गुण-गान करने, शुभ कर्मों के करने और बुरे कर्मों से बचने की बराबर प्रतिज्ञा करने आदि से मानव के अन्दर जहाँ श्रेष्ठ गुणों का प्रवेश होता है वहाँ उच्च कर्मों को करने की प्रेरणा, शक्ति व साहस भी प्राप्त होता है। साथ ही पाप-कर्मों के प्रति घृणा, लज्जा व भय उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त अपने जीवन-लक्ष्य का स्मरण कर उसकी ओर अग्रसर होने की चेतना व इच्छा जागृत होती है। बस, इन सभी कृत्यों का नाम पूजा-पाठ पद्धति है। यही पद्धति आत्म निरीक्षण, आत्म बोध अथवा आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया होगी। इस प्रक्रिया के बिना जीवन के किसी भी क्षेत्र में उन्नति होना असम्भव है। जिस प्रकार एक दुकानदार नित्य अपनी दुकान की रोकड़ मिलाता है उसी प्रकार अपने दैनिक जीवन की प्रतिदिन नियमित पूजा पाठ, सन्ध्या के रूप में रोकड़ मिलाना परमावश्यक है।

विद्यार्थी—क्या धार्मिक परम्पराओं का भी मानना अनिवार्य है ?

महात्मा—धर्म और धार्मिक परम्पराओं का वही सम्बन्ध है जो एक पेड़ की जड़ और उसकी शाखा-प्रशाखाओं में होता है। जड़ मुख्य वस्तु है उसकी सुरक्षा प्रत्येक काल में होनी अनिवार्य है ; परन्तु शाखा प्रशाखायें सूख जाने पर या नियन्त्रण से बाहर जाने पर काटी जा सकती हैं। इसी प्रकार, धर्म के मौलिक सिद्धान्त सत्य सनातन हैं ; पर उन पर खड़ी धार्मिक परम्परा देश, काल परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशील हैं। जो धर्म व धार्मिक संस्थाये जीवित होती हैं वे रूढ़िवाद के दल-दल में न फंसकर अपनी परम्पराओं का अपने अनुकूल समय-समय पर सृजन करती रहती है। वैदिक धर्म में स्मृतियों की परिवर्तित काल के अनुसार, रचना इसी का प्रमाण है कि देश, काल परिस्थितियों के साथ आर्य जाति अपनी परम्पराओं में संशोधन करती आ रही है और यही इसके दीर्घ जीवन का रहस्य है।

विद्यार्थी—धर्म का स्वरूप और इसका महत्व तो आज भली प्रकार समझ में आ गया ; परन्तु यह समस्या अभी हल नहीं हुई कि धर्म की पहचान का सरल उपाय क्या है ?

महात्मा—धर्म को पहचानने का सही उपाय तो वेदादि शास्त्रों का अध्ययन कर सत्य ज्ञान की प्राप्ति है।

विद्यार्थी—यदि कोई व्यक्ति वेदादि शास्त्रों के पढ़ने में असमर्थ है तो वह किस धर्म को पहिचानेगा ?

महात्मा—धर्मात्मा, विद्वान् महापुरुषों का सत्संग करने से ऐसा व्यक्ति धर्म से परिचित हो सकता है।

विद्यार्थी—धर्मात्मा पुरुषों का सत्संग करने का अवसर भी यदि प्राप्त न हो तो क्या उपाय है ?

महात्मा—ऐसे लोगों के लिए वेद ने उपाय बताया है।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशो।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

ऋ० १। २। ७। १९

सर्वत्र व्यापक भगवान् की "सृष्टि" को ध्यान से देखो ताकि तुम्हें अपने कर्तव्यपालन के लिए बल मिल सके और धर्म का ज्ञान हो सके। इस प्रकार प्रभु की मित्रता से मानव अपने को कृतार्थ कर सकता है।

विद्यार्थी—भगवान् की कृति को देखना वैज्ञानिकों का काम है साधारण व्यक्ति का नहीं।

महात्मा—फिर मनु महाराज ने सामान्य पुरुषों के लिये एक सरल उपाय बतलाया है कि—**'स्वस्य च प्रियमात्मनः"** अर्थात् जो काम और विचार आपकी अपनी आत्मा के लिए प्रिय है वैसा ही दूसरों के प्रति समझना और बर्तना धर्म है, इसके विपरीत व्यवहार अधर्म कहाता है।

विद्यार्थी—क्या वेद ने कहीं मनु महाराज के ऊपर कहे विचार का समर्थन किया है ?

महात्मा—हाँ। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के मन्त्र में भगवान् उपदेश देते हैं :—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृता।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

जो व्यक्ति अपनी आत्मा का हनन करता है वह अन्धकारमय योनियों तथा कष्टों को प्राप्त होते हैं।

विद्यार्थी—कुछ व्यक्ति कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं। इसमें आपका क्या विचार है ?

महात्मा—यह गम्भीर विषय है। अब समय भी समाप्त हो गया है! कल इस पर विचार करेंगे।

शान्तिपाठ के पश्चात् सभा समाप्त हुई।

४

धर्म और राजनीति

ईश-प्रार्थना और वेद-मन्त्रों का पाठ करने के पश्चात् महात्माजी ने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा।

भारत में आज सैक्यूलरवाद की आड़ में सर्वत्र धर्म पर झाड़ू लगाई जा रही है। खेद एवं आश्चर्य तो यह है कि इस विनाश-लीला को प्रगतिशीलता का प्रतीक बतलाया जा रहा है। अपने को प्रगतिशील व आधुनिक विचारक समझने वाले लोगों का कहना है कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है; धर्म को राजनीति के साथ मिलाने को वे घातक समझते हैं। धर्म से यदि उनका तात्पर्य मजहब से है तब तो उनका विचार उचित है पर यदि उनका अभिप्राय वास्तविक धर्म से है तब उनके विचारों से सहमत होना कठिन है।

इतिहास का अध्यायन करने से विदित होता है कि एक दिन था जब पाश्चात्य जगत् में मजहबों का बोल-बाला था; मजहब के पैरोकारों ने विज्ञान को धर्म का शत्रु समझ राज्य से बहिष्कृत करा दिया था, काल की गति विचित्र है। आज विपरीत स्थिति है। राजनीति द्वारा धर्म का बहिष्कार कर दिया गया है। यह दोनों ही दृष्टिकोण वास्तविकता से कोसों दूर और मानव जाति की प्रगति एवं सुख-शान्ति के प्रबल बाधक हैं। दुर्भाग्य वश वर्तमान संसार इन्हीं दो दृष्टिकोणों में बँटा है जब कि संसार इन दोनों के मध्य में है। धर्म और राजनीति एक दूसरे के शत्रु न होकर पूरक हैं। विशिष्टता की दृष्टि से धर्म ही प्रमुख है धर्म के लिए राजनीति को छोड़ा जा सकता है। पर राजनीति के लिये धर्म का त्याग संभव नहीं है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपने राजनीति को गौण और धर्म को प्रमुख बताया है। आपकी यह धारणा वर्तमान युग की मान्यता के सर्वथा विपरीत है। क्या आप अपने पक्ष का औचित्य युक्तियों से सिद्ध कर सकते हैं ?

महात्मा—विद्यार्थियो ! धर्म की सबसे प्रथम मान्यता यही है कि बुद्धि तथा युक्ति के आधार पर सत्य सिद्ध होने वाली बातों को ही ग्रहण करना चाहिए। इसी कसौटी पर आज यहाँ चर्चा हो रही है। वस्तुतः धर्म और राजनीति दोनों ही गौण हैं मुख्य चीज तो मानव एवं मानव समाज की सुख, शान्ति व ठीक दिशा में प्रगति है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के निमित्त धर्म और राजनीति साधन मात्र हैं।

यदि प्रत्येक व्यक्ति सत्य निष्ठा से धर्माचरण करे तो सुख-शान्ति की प्राप्ति स्वतः हो जाती है। राजनीति की आवश्यकता तो तभी होती है जब लोग अपने धर्म का पालन न कर अधर्म करने लग जाते हैं और अपने को सुखी बनाने के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह के वशीभूत हो दूसरों के साथ अन्याय-अत्याचार करते हैं साथ ही दूसरों के अधिकारों का अपहरण करते हैं। इतिहास स्वतः इस तथ्य का साक्षी है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जब लोग सत्य के अनुसार अपने धर्म का पालन करते थे, तब किसी राजा का अथवा राजनीति का नाम तक नहीं था।

राजनीति आपत्ति काल की वस्तु है। जब व्यक्ति धर्म मार्ग को छोड़ अधर्म मार्ग पर चलने लगते हैं तब उन्हें दण्ड के बल पर धर्म पर लाना ही राजनीति का उद्देश्य है। फलत धर्म ही मुख्य है राजनीति गौण है। दोनों का लक्ष्य एक है ; परन्तु मार्ग अलग-अलग हैं।

विद्यार्थी—आपने अभी कहा कि धर्म और राजनीति का लक्ष्य एक है और साथ ही अलग-अलग भी बताया अतः कृपया अपने पक्ष का कुछ अधिक स्पष्टीकरण करें।

महात्मा—धर्म और राजनीति का संयुक्त लक्ष्य मानव-तथा मानव समाज का चौमुखी कल्याणा करना है। धर्म का काम है, अहिंसा, प्रेम, दया, क्षमा, अन्तः प्रेरण आदि द्वारा मानव के मन व मस्तिष्क का विकास और अपनयन कर उसे श्रेय माग पर चलने की प्रेरणा देना दूसरी ओर राजनीति हिंसा, दण्ड, भय इत्यादि द्वारा व्यक्ति को धर्म पर चलने को बाध्य करती है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! सामान्यतः अनुभव के आधार पर कहा जा

सकता है धर्म की अपेक्षा राजनीति का मार्ग अधिक फलदार और प्रभाव शाली है। उपदेश की अपेक्षा व्यक्ति दंड द्वारा शीघ्र सही मार्ग पर आ जाता है। दण्ड के बल पर सिंह आदि भयानक पशु तक को बकरियों के साथ रहने के लिए बाध्य किया जा सकता है। जाहिर है, धर्म की अपेक्षा राजनीति अधिक उपयोगी और प्रभावशाली साधन है; और धर्म उसकी तुलना में प्रभावहीन है।

महात्मा—बच्चो! यह ठीक है कि लोभ, भय, हिंसा इत्यादि द्वारा परिणाम शीघ्र प्राप्त होते हैं, परन्तु यह स्थिति क्षणिक होती है। लोभ व भय इत्यादि के रहने तक ही उनका अस्तित्व ठहरता है। इनकी समाप्ति पर इनका जीवन भी समाप्त होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि लोभ और भय के आधार पर समाज में सुख-शान्ति बनाये रखना आदर्श स्थिति नहीं है। दण्ड के बल पर पशु समाज को ही नियन्त्रित किया जा सकता है मानव समाज को नहीं।

इसके सर्वथा विपरीत धर्म ऐसा अमोघ शस्त्र है जो मानव के मन और मस्तिष्क को एकदम बदल देता है। जब मानव के मन और मस्तिष्क में ही पाप, अन्याय और अत्याचार करने के विचार समाप्त हो जाते हैं फिर निश्चय ही मानव समाज में स्थायी सुख-शान्ति स्वत: विराजमान हो जाती है।

संसार का इतिहास साक्षी है कि हिंसा के बल पर स्थापित सम्राज्यों का अस्तित्व हिंसा के द्वारा ही समाप्त हो गया। क्योंकि हिंसा का अन्त भी हिंसा में ही होता है। दूसरी ओर संसार में जिन लोगों ने विचारों के आधार पर क्रान्ति का सूत्रपात किया उनका साम्राज्य अभेद्य दुर्ग की भाँति समय की मार के सम्मुख सीना ताने खड़ा रहा। आर्यजाति का उज्ज्वल इतिहास इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। विश्व के ऐतिहासिक इस बात पर चकित हैं कि हजारों वर्षों की दासता और विदेशियों तथा विधर्मियों द्वारा किये गये भयंकर अत्याचारों के सहते हुए भी आर्यजाति कैसे आज तक सुरक्षित और जीवित है? इसका एकमात्र रहस्य आर्य जाति की राजनीतिक सत्ता नहीं किन्तु धर्म और आध्यात्मिक दर्शन के प्रति इसकी अगाध श्रद्धा, निष्ठा और प्रेम है।

विद्यार्थी—यदि धर्म को छोड़कर राजनिति का ही सहारा लिया जाए तो आपकी दृष्टि में यही दोष है कि उसके द्वारा स्थाई सुख, शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती क्या इसके अतिरिक्त अन्य भी कोई दोष है क्यों कि यह दोष कुछ विशेष भयानक नहीं है।

महात्मा—बच्चो ! हिंसा के आधार पर स्थापित शान्ति भयावह होती है। यह दो धारी तलवार की भाँति कार्य करती है। ऐसी शान्ति तानाशाई का रूप भी धारण कर सकती है। उस समय राज्य की समूची शक्ति एक तानाशाह के हाथ में चली जाती है और समूचा राष्ट्र गुलामों की भांति उसकी दया पर जीवित रहने लगता है। इसलिए डण्डे के बलपर सुख शान्ति की कल्पना भयप्रद है।

विद्यार्थी—तो क्या राजनीति को छोड़ केवल धर्म के आधार पर समाज में सुख-शान्ति स्थापित की जा सकती है ?

महात्मा—कदापि नहीं। संसार में अच्छे-बुरे दोनों ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं। बुरे व्यक्तियोंको सही मार्ग पर लाने के निमित्त राजनीति की आवश्यकता है। पर धर्म की अपेक्षा राजनीति को प्राथमिकता देना घातक है। राजनीति आपत्ति काल में काम आने वाली वस्तु है, यह मानकर ही इसे ग्रहण करना चाहिए ?

विद्यार्थी—यदि धर्म और राजनीति दोनों को साथ लेकर चला जाय तो दोनों के मध्य क्या सम्बन्ध रखना होगा ?

महात्मा—धर्म और राजनीनि में वही सम्बन्ध होता है जो पति और पत्नी में होता है। धर्म पति है और राजनीति पत्नी है। संसार में जब से राजनीति देवी ने अपने पति देवता धर्म को तलाक देकर वेश्या का रूप धारण कर लिया है तभी से जगत् में अशान्ति व्याप्त है। मानव समाज में स्थायी सुख-शान्ति की स्थापना के लिए यह अनिवार्य है कि राजनीति देवी की इस वेश्या-वृत्ति को समाप्त कर इसे अपने पतिरूप धर्म देवता के घर में सती सावित्री की भाँति रहने को विवश किया जाय। धर्महीन राजनीति रावण राज्य उत्पन्न करती है और धर्ममय राजनीति 'राम राज्य'।

विद्यार्थी—क्या आप राष्ट्र की धर्म निरपेक्षता को उचित नहीं मानते ?

महात्मा—उचित मानता हूँ, परन्तु धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म हीनता न होकर राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों को अपने विश्वास अनुसार निज धर्म के पालन और शिक्षण की सुविधाओं की व्यवस्था करना है।

विद्यार्थी—राष्ट्र में विभिन्न धर्मावलम्बी है। सरकार किस धर्म को आश्रय और प्राथमिकता दे ?

महात्मा—देश की शिक्षा पद्धति में धार्मिक शिक्षा का अनिवार्य स्थान

सभी वर्गों के बच्चों के लिए होना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वर्ग नरक की कल्पना को छोड़कर नैतिकता के नियम लगभग सभी धर्मों में समान हैं। शिक्षा पद्धति में सरकार इन सिद्धान्तों को शामिल कर छात्रों को धार्मिक जीवन की ओर प्रेरित कर सकती है।

इसके अतिरिक्त सरकार समस्त धर्मों, में से सर्वहितकारी सिद्धान्तों और उपदेशों का संग्रह करके उनका प्रचार और प्रसार कर सकती है।

विद्यार्थी—महात्मा जी राजनीति और धर्म के सम्बन्ध को आप ने बड़े ही सुन्दर ढंग से हमारे मस्तिष्कों में उतार दिया। आज तक हम सब विद्यार्थी अन्धेरे में थे। परन्तु एक समस्या अभी तक हमारे लिये जटिल बनी हुई है वह है धर्म और विज्ञान का सम्बन्ध। आपने अपने भाषणों में इस सम्बन्ध पर यद्यपि कुछ प्रकाश डाला है परन्तु उससे हमारी संतुष्टि नहीं हुई। विज्ञान आज संसार की उन्नति का मूल आधार है। उसका परित्याग स्वयं कष्टों और निर्धनता को आमन्त्रित करना है। धर्म को विज्ञान का शत्रु समझा जाता है। ऐसी अवस्था में हम धर्म का पक्ष कैसे ले सकते हैं। अतः आप धर्म और विज्ञान के पारस्पारिक सम्बन्ध पर तनिक प्रकाश डालने की कृपा करें।

अपनी घड़ी की ओर देखते हुए महात्माजी ने इस गम्भीर विषय को अगले दिन लेने का आवश्वासन देते हुए शान्ति पाठ के साथ आज की प्रार्थना सभा समाप्त की।

५

धर्म और विज्ञान

आज स्कूल का नास्तिक अध्यापक महात्मा जी पर अपनी पूर्ण विजय की कामना से विद्यार्थियों को शस्त्रार्थ के लिए तैयार कर रहा था। वह महात्माजी के गत प्रवचनों की सफलता को अपनी मृत्यु के रूप में देखता रहा। आज उसका दृढ़ विश्वास था कि महात्मा जी अपने पक्ष का समर्थन न कर सकेंगे।

धर्म और विज्ञान के विरोधी सिद्ध होने पर विद्यार्थी पुनः उसके पक्ष में आ जाएंगे उसने कार्लमार्क्स आदि सभी साम्यवादी गुरुओं और भौतिकवादी विद्वानों की युक्तियों का संग्रह कर महात्मा जी पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया है।

महात्मा जी नियमानुसार ठीक समय पर पधारे। अपने प्रवचन के प्रारम्भ करने से पूर्व उन्होंने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मधुर मुस्कान के साथ समस्त विद्यार्थियों की ओर दृष्टिपात किया। नास्तिक अध्यापक की गुप्त विधियाँ उनके कानों तक पहुँच चुकी थीं। पर उन्हें अपने पक्ष की सफलता में अटल विश्वास था। अपने विषय को उपस्थित करते हुए उन्होंने अपना प्रवचन प्रारम्भ किया।

प्यारे बच्चो। संसार के अधिकांश लोगों की यह मान्यता है कि धर्म विज्ञान का शत्रु है। उनकी यह मान्यता उनकी अपनी अज्ञानता व अनभिज्ञता का ही परिणाम है। वास्तव में धर्म और विज्ञान एक ही विषय के दो अंग हैं; और भेद केवल उनके नाम में ही है। विज्ञान जड़ पदार्थों के स्वरूप और उनकी क्रियाशक्ति का नाम है और धर्म चेतन आत्मा-परमात्मा के स्वरूप अथवा गुण कर्म, स्वभाव का नाम है। इस प्रकार विज्ञान और धर्म दोनों ही इस समूचे जगत् की प्रत्येक जड़ व चेतन वस्तु के गुण कर्म, स्वभाव व इनके आपसी सम्बन्धों को जानने का प्रयास करते हैं। दोनों प्रकार की खोजें एक-दूसरे की पूरक हैं, और एक-दूसरे के बिना अपने में अधूरी हैं। यह बात नितान्त असम्भव है कि धार्मिक व्यक्ति इस जड़ जगत् के वास्तविक स्वरूप को जाने बिना मोक्ष की प्राप्ति सके, और एक वैज्ञानिक आत्मा-परतमामा के रहस्य को जाने बिना पूर्ण सत्य की खोज कर सके।

विद्यार्थी—क्या आप अपनी इस मान्यता की पुष्टि में वेद-शास्त्रों का प्रमाण दे सकते हैं ?

महात्मा—एक नहीं, अनेकों प्रमाण वेद-शास्त्रों में इन सिद्धान्तों के पोषक विद्यमान हैं। नमूने के रूप में कुछ इस प्रकार हैं—

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजाः इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत्॥

अथर्व १०।८।३७

जो मनुष्य उस सर्वत्र फैले हुए सूत्र को जानता है जिस सूत्र में यह सब लोक-लोकान्तर तथा उत्पन्न हुई वस्तुयें माला के दानों की भाँति पिरोये हुए

हैं और जो पुरुष इस सूत्र के भी सूत्र को जान लेता है वह महान् ब्रह्म को भी जान सकता है।

विष्णोः कर्माणि पश्यत्, यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा । ऋ० १।२२।१६

हे मनुष्यो ! विष्णु के कार्मों (जगत्) को देखो जिसे देखकर मनुष्य अपने व्रतों का पालन करने में सफल होता है। क्योंकि विष्णु सर्वव्यापक ऐश्वर्यशाली ब्रह्म इन्द्र जीवात्मा का सबसे घनिष्ठ मित्र है।

(१) अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसूम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँरताः ।।
(२) अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।
(२) सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयँ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ।।
(यजुर्वेद ४०।६, १०, ११)

(१) जो व्यक्ति कार्य प्रकृति को आत्मा की उपेक्षा करके मान्यता देते हैं वे गहरे अन्धकार में प्रवेश करते है और जो आत्म की उपेक्षा करके केवल कारण प्रकृति की ही उपासना करते हैं वे पहले से भी अधिक अन्धकार को प्राप्त होते हैं।

(२) कारण प्रकृति और कार्य प्रकृति के भिन्न-भिन्न फल होते हैं। ऐसा उन विद्वान् लोगों से सुनते आये हैं जो विचारशील हैं।

(३) जो व्यक्ति ब्रह्म-जीव और कार्य प्रकृति दोनों को साथ-साथ जानते हैं, वे जड़ प्रकृति द्वारा इस जगत् में मृत्यु को तैरकर ब्रह्म ज्ञान द्वारा अमृत पदको प्राप्त करते हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपने धर्म और विज्ञान को एक ही वस्तु के दो अंग कहा है सो कैसे ?

महात्मा—भाई। धर्म की परिभाषा के अनुसार जिन मूलभूत तत्त्वों के कारण किसी वस्तु का अस्तित्व रहता है वही उसका धर्म होता है इस प्रकार संसार में जड़ चेतन प्रत्येक वस्तु के अपने मूलभूत विशेष गुण-कर्म होते हैं। यही उसका अपना स्वरूप होता है। विज्ञान जड़ पदार्थों के गुणों की ही तो खोज करता है अर्थात् विज्ञान संसार के जड़ पदार्थों के धर्मों की खोज करता है।

इस प्रकार विज्ञान-शास्त्र जड़ पदार्थों का धार्मिक ग्रन्थ होनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं। जड़ पदार्थ होने के कारण वह स्वयं उनका लाभ न उठाकर चेतन मानव ही उसके गुणों को जानकर उससे लाभ उठाता है।

विज्ञान की भांति चेतन जगत् के गुण कर्मस्वभाव की खोज करने वाले या इसके प्रकट करने वाले विज्ञान का नाम मानव धर्म है। इस प्रकार दोनों में नाम-मात्र भेद है।

विद्यार्थी—क्या विज्ञान और धर्म में नाम भेद ही है या इनकी क्षमता में भी भेद है ?

महात्मा—दोनों की एकता का अर्थ केवल इतना ही है कि दोनों का लक्ष्य एक है ; परन्तु दोनों की क्षमता व सीमा में बड़ा भारी भेद है। विज्ञान अपने समीति शक्ति सम्पन्न भौतिक साधनों पर निर्भर होने के कारण उसकी खोज भी सीमित होती है। वह किसी वस्तु के गुण तथा उसके अन्दर विभिन्न वस्तुओं की उपस्थिति तथा उनकी मात्रा मात्र बतलाने में समर्थ रहता है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। परन्तु धर्म की खोज का साधन शक्ति सम्पन्न चेतन आत्मा होने के कारण खोज की सीमा बड़ी विशाल है। विज्ञान जहां अपनी खोज समाप्त करता है धर्म बहुधा अपनी खोज वहीं से प्रारम्भ करता है। उदाहरणार्थ।

(क) जब विज्ञान मानव की खोज करने लगता है तो वह निम्न परिणाम पर पहुँच पाता है अर्थात् मानव का शरीर निम्न पदार्थों का मेल है।

(१) १० गेलन पानी।
(२) ९००० पेन्सिल के लायक कार्बन।
(३) २२०० दियासलाई बनाने लायक फासफोरस।
(४) दो कीलों के बराबर लोहा।
(५) एक कप को रंगने लायक चूना।
(६) कुछ गन्धक तथा मैगनेशियम के टुकड़े।

परन्तु यदि वैज्ञानिक से यह प्रश्न कर दिया जाय कि यदि ऊपर लिखित वस्तुएँ उसे देदी जाँय तो क्या वह उनकी सहायता से एक जीवित मनुष्य की रचना कर सकता है तो वह अपना सिर खुजालाने लगता है।

परन्तु जब एक मानव धार्मिक वैज्ञानिक के सम्मुख उपस्थित होता है तो उसकी खोज इन प्रश्नों से प्रारम्भ होती है—(१) यह मानव के

शरीर के पीछे छिपा आत्मा कौन है ? कहाँ से आया है ? उसे यह शरीर क्यों मिला है ? इस शरीर की बुद्धिपूर्वक रचना के पीछे क्या रहस्य है । मृत्यु के पश्चात् शरीर की चेतना कहाँ चली जाती है ? और उस चेतन वस्तु के बिना शरीर ठहर क्यों नहीं पाता है ?

धर्म और विज्ञान की सीमा व क्षेत्र को बतलाने वाला एक और ऐतिहासिक तथ्य यहाँ उपस्थित करना उपयुक्त होगा । मोहन जो दड़ों की खुदाई करके वैज्ञानिकों ने भूमि के गर्भ में छिपी वस्तुओं को प्रकाश में लाकर एक बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया परन्तु उनकी शक्ति व सीमा उनको प्रकाश में लाने तक ही थी । परन्तु प्रत्येक वस्त्र किस धार्मिक व साँस्कृतिक भावना का प्रतीक है यह जानने की क्षमता वैज्ञानिकों के पास नहीं है । इसे जानने की क्षमता तो उन्हीं विद्वानों में होती है जिन्होंने धर्म और संस्कृति के सम्पूर्ण इतिहास व स्वरूप को जाना है ।

इसी तथ्य को संसार के महान वैज्ञानिक श्री आइन्स्टीन ने उस समय स्वीकार किया जब उनसे यह प्रश्न किया गया कि अणु शक्ति के आविष्कार के पश्चात् अब उनकी दृष्टि में अगली खोज क्या होगी ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—"अणुशक्ति की खोज ने वैज्ञानिकों के सम्मुख पहिले की अपेक्षा अधिक व जटिल समस्या यह उपस्थित करदी है कि अणु में व्याप्त इस अथाह शक्ति को नियन्त्रित करने वाली कौन शक्ति है ? इसी सचाई को स्वीकार करते हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक थामसन ने कहा है—

'When minor mistries disappear greater stand confessed. Science never destroys wonder, but only shifts it higher and deeper."

(Introduction to Seience by
J.A. Thomson M.A.)

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आप ने अपने गत एक प्रवचन में इस बात को स्वीकार किया था कि धर्म का लक्ष्य मानव व मानव समाज को सुखी बनाना है । मानव को सुखी बनाने के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, दवा, आदि की आवश्यकता होती है । भौतिक जगत् समस्त भोग समाग्रियों को प्रदान करने की क्षमता रखता है फिर व्यर्थ के प्रश्नों को लेकर धर्म के चक्कर मे पड़ने की क्या आवश्यकता है ? महात्मा बुद्ध ने भी परमात्मा आदि के प्रश्नों को व्यर्थ समझकर छोड़ दिया था ।

महात्मा— धर्म का लक्ष्य मानव को सुखी बनाना है यह बात सत्य है। सुख इन्द्रियों की इच्छाओं की पूर्ति का ही दूसरा नाम है। इन्द्रियों की इच्छायें असीमित हैं और भोग सामिग्रयाँ सीमित हैं। क्या असीमित इच्छाओं की सीमित जगत् में पूर्ति करना विज्ञान की क्षमता है? क्या ऐसा कभी सम्भव भी हो सकता है? यदि नहीं तो विज्ञान किस प्रकार मानव को सुखी बना सकेगा?

भौतिक विज्ञान गरीबी दूर कर सकता है यह बात सत्य है; परन्तु मानसिक गरीबी की समाप्ति विज्ञान की शक्ति व सीमा से बाहर है; पर धर्म के पास ज्ञान-शक्ति विद्यमान है जिसके द्वारा इन्द्रियों की पूर्ण संतुष्टि तथा मानसिक दासता की समाप्ति क्षण भर में हो जाती है। इस प्रकार धर्म की शरण में आये बिना विज्ञान द्वारा मानव समाज को सुखी बनाने की कल्पना अपने को धोखा देना है।

विद्यार्थी—आप की दृष्टि में केवल भौतिक विज्ञान द्वारा मानव को सुखी बनाना असम्भव है पर हम देखते हैं कि रूस-चीन धर्म के बिना सुख व शांति की प्राप्ति कर रहे हैं, यह कैसे?

महात्मा—बच्चो! आप को भारी भ्रान्ति है कि रूस-चीन में लोग सुखी व शान्त हैं। क्या रोटी, कपड़ा, मकान आदि के मिल जाने मात्र से कोई सुखी बन जाता है? यदि ऐसा है तो फिर जेल खाने के कैदी सबसे अधिक सुखी होने चाहिए जिन के लिए रोटी, कपड़ा, मकान दवा आदि सभी की अच्छी व्यवस्था है? क्या आप लोग सुख की प्राप्ति के लिए जेल जाना पसन्द करोगे? यदि नहीं तो क्यों?

विद्यार्थी—महात्मा जी! जेल में व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता का अभाव है, अर्थात् वहां स्वतंत्रता से बोलने, सोचने, करने व रहने की छूट नहीं है। स्वतंत्रता के बिना सुख की कल्पना करना कोरी मूर्खता है।

महात्मा—बस रूस-चीन में इसी प्रकार का सुख है। वहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रत का सर्वथा अभाव है। यदि उन्हें छोटी जेल न कहकर बड़ी जेल कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। धर्म व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मानव की चौमुखी उन्नति व प्रगति का मूल मानता है।

विद्यार्थी—धर्म को छोड़ केवल विज्ञान का ही सहारा लेकर चला जाए तो इसका क्या कुपरिणाम हो सकता है?

महात्मा—इसका कुपरिणाम निश्चित रूप से विनाश होगा ? कारण, विज्ञान ने अणुशक्ति का आविष्कार कर दिया है। अणुशक्ति के सदुपयोग से संसार को स्वर्ग और दुरुपयोग से इसे श्मशान भूमि बनाया जा सकता है। कोरे विज्ञान के शिक्षण से अणुशक्ति का सदुपयोग होना सर्वथा असम्भव है क्योंकि अणुशक्ति का समूचे जगत् के हित में प्रयोग तभी सम्भव है जब मानव के हृदय में दूसरों के लिए प्रेम, दया, क्षमा सहायता व अपनेपन की भावना हो। विज्ञान में इन गुणों को मानव के अन्दर उत्पन्न करने की क्षमता ही नहीं है। विज्ञान अपनी विभिन्न खोजों द्वारा मानव की बुद्धि को ही तीव्र बनाने की शक्ति रखता है। प्रेम, सेवा, दया, क्षमा आदि गुण बुद्धि के नहीं हृदय के हैं। हृदय के इन गुणों का विकास करने की क्षमता केवल आध्यात्मिक शिक्षण में ही है। इसलिए भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान के समन्वय से ही संसार को स्वर्ग बनाना सम्भव है अन्यथा नहीं।

प्रधानाचार्य—महात्मा जी ; प्रतीत होता है आज आपने अपनी घड़ी की ओर ध्यान नहीं दिया ?

समय का ध्यान आते ही महात्मा जी ने अपने प्रवचन को शान्तिपाठ के साथ विराम दे दिया।

६

पूजा पद्धति

महात्मा जी के प्रवचनों के प्रति विद्यार्थियों में इतनी रुचि बढ़ गई कि प्रार्थना-सभा मे विद्यार्थीयों की शत प्रतिशत उपस्थिति होने लगी। सभी धर्मों के बच्चे समान रूप से इनके प्रति आकर्षित थे। परन्तु नास्तिक अध्यापक तथा कुछ मुट्ठी भर विद्यार्थी अभी भी थोड़ी बेचैनी अनुभव कर रहे थे। नास्तिक अध्यापक की आधी प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी थी। प्रवचनों से पूर्व वह छात्र-छात्राओं का मसीहा बना था। निराशावस्था में वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति

दाव पर लगा रहा था। आज उसने स्वयं मैदान में उतरने का निश्चय किया और महात्मा जी को पराजित करने की योजना बना ली।

महात्मा जी ने नियमानुसार वेद-मन्त्रों का पाठकर विद्यार्थियों को सम्बोधन करते हुए कहा कि धर्म के सम्बन्ध में और कोई शंका उनके हृदयों में हो उसे वह उपस्थित करें ताकि उसी पर प्रकाश डाला जाए। बस फिर क्या था? नास्तिक अध्यापक खड़ा हो गया। उसने महात्मा जी को सम्बोधन करते हुए कहा।

आप धर्मों में प्रचलित पूजा-पद्धतियो पर अपने विचार व्यक्त करें। उसने जानबूझकर इस विषय को छेड़ा ताकि विभिन्न-प्रकार की पूजा-पद्धति में विश्वास रखने वाले विद्यार्थियों में महात्मा के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कर सके। उसका विश्वास था कि जिस पूजा-पद्धति का महात्मा समर्थन करेंगे उसके अतिरिक्त पूजा-पद्धति में विश्वास रखने वाले विद्यार्थी उनके शत्रु बन जायेंगे।

महात्मा जी नास्तिक अध्यापक की चाल को तुरन्त ताड़ गये। उन्होंने कहा यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि इस पर चर्चा किये बिना धर्म-चर्चा पूर्ण हो नहीं सकती, क्योंकि वर्तमान समय में पूजापाठ का नाम धर्म और धर्ममात्र पूजा-पाठ का नाम बन गया है। संसार का कोई भी धर्म या मजहब ऐसा नहीं है जो पूजा-पद्धति से रहित हो। जैसा मैंने आपको अपने एक प्रवचन में पूजा के महत्व को बतलाते हुए कहा थां कि पूजा-पाठ धर्माचरण में प्रभावशाली सहायक है। इससे मानव को धर्माचरण के लिये ज्ञान, शक्ति, प्रेरणा मिलती है। इसके अतिरिक्त आप क्या जानना चाहते हो सो प्रश्न करें उसका समाधान किया जाएगा।

अध्यापक—महात्मा जी! संसार के लगभग सभी धर्म अपनी-अपनी निराली पूजा-पद्धति रखते हैं। स्वयं हिन्दु धर्म में अनेक पूजा-पद्धति प्रचलित हैं। तो इन विभिन्नताओं का कारण क्या है?

महात्मा—पूजा-पद्धतियों में भेद का मूल कारण विभिन्न मत-मतान्तरों द्वारा कल्पित इष्ट देवता के स्वरूप की विभिन्नता है। अर्थात् अपनी कल्पना के अनुसार अपने कल्पित देवता को प्रसन्न करने के लिये लोगों ने नाना प्रकार की पूजा-पद्धतियों का आविष्कार कर लिया है। ये आविष्कार एक दिन और एक व्यक्ति की उपज न होकर हजारों वर्षों में अनेक व्यक्तियों के मस्तिष्कों की उपज हैं।

अध्यापक—क्या इष्ट देवता से आप का तात्पर्य ईश्वर से है।

महात्मा—ईश्वर से भी है! और अन्यों से भी क्योंकि संसार में जैन आदि ऐसे धर्म भी हैं जो ईश्वर को नहीं मानते; परन्तु अपने धर्म-संस्थापक को ईश्वर समान मानते हैं और इनकी अपनी एक पूजा-पद्धति है।

अध्यापक—जब ईश्वर एक है; और उसका स्वरूप अथवा गुण, कर्म, स्वभाव भी एक है तब भिन्नता का क्या कारण है?

महात्मा—ज्ञान की न्यूनाधिकता तथा अज्ञान के कारण ही एक वस्तु के विभिन्न स्वरूपों की कल्पना का जन्म होता है।

अध्यापक—आज शिक्षा का आश्चर्यजनक विस्तार हो गया है और विज्ञान ने मानव के मस्तिष्क की आँखें खोल दी है। तब ईश्वर के सही स्वरूप की कल्पना क्यों नहीं हुई?

महात्मा—अन्धविश्वास, रूढ़िवाद तथा गुरुडम बुद्धि के शत्रु होते हैं। जहाँ ये तीनों शत्रु मौजूद हैं वहाँ ज्ञान की वृद्धि होना सर्वथा असम्भव है। वहाँ बुद्धि विरोधी मूर्खतापूर्ण बातें भी सत्य प्रतीत होती हैं। उन्हें उनकी सत्यता पर सन्देह करने तक का साहस नहीं होता; क्योंकि उनका विश्वास है कि ईश्वर की बातों को समझना मनुष्य बुद्धि से परे है और उन पर सन्देह करना ईश्वर को नाराज करना है।

अध्यापक—ईश्वर अथवा इष्ट देवता के स्वरूप की भिन्नता से ही पूजा-पद्धतियों में भिन्नता का प्रवेश हुआ इसे आप किस प्रकार सिद्ध करते हैं?

महात्मा—संसार की समस्त धार्मिक पूजा-पद्धतियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, आन्तरकि एंव बाह्य। जिन धर्मावलम्वियों की दृष्टि में ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, न्यायकारी, सर्वशक्तिमान् आदि है उनकी पूजा आन्तरिक होती है वे अन्तमुर्ख होकर उसका ध्यान व उपासना करते हैं, परन्तु जिनकी दृष्टि में ईश्वर साकार है; और वह कहीं विशेष स्थान पर विद्यमान हो और वह प्रार्थना करने या किसी की सिफारिश पर पापों को क्षमा कर देता है, उनकी पूजा-पद्धति बाह्य तथा सर्वथा भिन्न होती है। उनकी पूजा पद्धति में उसकी पूर्ति उसके भोजन के लिये कुर्बानियां और एक निश्चित दिन अपने पापों की क्षमा-याचना करना आदि रहता है।

अध्यापक—प्रायः लोगों का कहना है कि जिस प्रकार समस्त नदियाँ विभिन्न मार्गों से बहती हुई एक समुद्र में जा मिलती हैं उसी प्रकार समस्त

पूजा-पद्धतियाँ मानव को एक ही केन्द्र बिन्दु 'ईश्वर' के पास पहुँचा देती हैं क्या आप इस मान्यता से सहमत नहीं ?

अध्यापक—मैं उन सभी बातों से सहमत है जिनसे बुद्धि सहमत है। जिन बातों से बुद्धि सहमत नहीं उनसे सहमत होने के लिये सम्भवतः आप भी सहमत न होंगे। आप स्वयं सोचिए कि एक ओर एक व्यक्ति ईश्वर की उपासना करते हुए संसार के समस्त भोगों का परित्याग कर ध्यानावस्थित है और संसार भर के प्राणियों को अपने रूप में देखकर उनसे प्यार और उनकी सेवा करता है और दूसरी ओर एक व्यक्ति ईश्वर को प्रसन्न करने के नाम पर भेड़-बकरी आदि की कुर्बानी दे रहा है ; और धर्मियों को काफिर समझ उनकी लूट, कत्ल आदि करता है तो इन दोनों प्रकार की पूजा-पद्धतियों को बुद्धि किस प्रकार एक समझे और किस प्रकार एक-दूसरे की विरोधी उक्त पूजा-पद्धति मानव को एक ही लक्ष्य तक पहुँचएगी ?

विद्यार्थी—महात्मा जी, पूजा का आधार भावना होता है। जब सभी पूजा-पद्धतियों की भावना "ईश्वर-भक्ति" है तब उनका परिणाम एक सदृश क्यों नहीं होगा ?

महात्मा—बच्चे। परिणाम अथवा फल भावना का नहीं है अपितु कर्म का होता है। उदाहरणार्थ, एक विद्यार्थी, परीक्षा में उत्तीर्ण होने की भावना व कल्पना तो करे परन्तु आचरण में वह पढ़ने के स्थान पर खेलों को महत्व दे तो क्या वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेगा ? इसके अतिरिक्त जब हम यह स्वीकार करते हैं कि हम सब का पिता ईश्वर ही है तो फिर क्या कोई पिता अपने एक निर्बल, असहाय एवं मूक पुत्र की बलि अपने दूसरे सबल व सशक्त पुत्र के द्वारा होते देख उससे प्रसन्न होगा या अप्रसन्न ? क्या वह उसकी भावना को महत्व देगा या उसके कर्म को ? क्या रेत में चीनी की भावना बनाकर उसे खाने से वह चीनी बन सकेगी ?

महात्मा जी की युक्ति-युक्त बात सुन सर्वत्र सन्नाटा छा गया और किसी विद्यार्थी को आगे प्रश्न करने का साहस न हुआ। इस अवस्था को नास्तिक अध्यापक सहन न कर सका ; और उसने खड़े होकर यह प्रश्न किया।

अध्यापक—क्या आप की दृष्टि में भावना का कोई महत्व नहीं है ?

महात्मा—है क्यों नहीं ! भावना के बिना व्यक्ति का कर्म आत्महीन होता है और उसकी सफलता भी संदिग्ध रहती है ? परन्तु भावना वही

सार्थक व सहायक होती है जो बुद्धि पर ग्राधारित हो बुद्धिहीन भावना निरर्थक होती है।

ग्रध्यापक—ग्रापने ग्रभी बतलाया था कि ईश्वर की साकार व निराकार कल्पनाग्रों के ग्राधार पर ग्रान्तरिक व बाह्य दो प्रकार की पूजा-पद्धति प्रचलित हैं तो क्या भावना भी दो ही प्रकार की है ? यदि हाँ, तो दोनों का स्वरूप ग्रौर परिणाम क्या है ?

महात्मा—बाह्य पूजा पद्धति के पीछे सौदेबाज़ी की भावना होती है। विशिष्ट प्रकार की पूजा-पद्धति करने पर ईश्वर बदले में उनके पापों को क्षमा कर देगा ग्रौर उन्हें स्वर्ग प्रदान करदेगा ग्रन्यथा नहीं। दूसरी ग्रान्तरिक पूजा-पद्धति में इसके सर्वथा विपरीत ग्रात्मोन्नति ग्रथवा ईश्वरीय गुणों को धारण कर सार्वजनिक जीवन में धर्माचरण के लिए ज्ञान, शक्ति व प्रेरणा प्राप्त करना है। उदाहरणार्थ, प्रातः काल एक नौकर ग्रपनी नौकरी पर एक बगीचे में होकर जाता है ; ग्रौर दूसरा व्यक्ति उस बगीचे में स्वास्थ्य लाभ करने की दृष्टि से घूमने ग्राया है। देखने में दोनों व्यक्तियों का बगीचे में घूमने का कार्य समान है ; पर परिणाम सर्वथा विपरीत है। इसी प्रकार दोनों प्रकार की पूजा-पद्धतियों के परिणाम कदापि एक नहीं हो सकते हैं ? क्योंकि दोनों की पृष्ठभूमि में भिन्नता है फलतः समस्त पूजा-पद्धतियों के पीछे एक ही भावना काम करती है यह कहना भी भारी भूल है।

ग्रध्यापक—महात्मा जी ! ग्राप कौन सी पूजा-पद्धति में विश्वास रखते हैं ?

महात्मा—मैं तो उसी पूजा-पद्धति में विश्वास करता हूँ जिसमें सोदेबाजी न होकर ग्रात्मोभति, ग्रात्मचिन्तन व ग्रात्मशुद्धि की भावना हो।

पापों की क्षमा

ग्रध्यापक—तो क्या ईश्वर हमारी प्रार्थना सुनकर हमें हमारे पापों से मुक्त नहीं करता है ?

महात्मा—ईश्वर न्यायकारी है वह किसी की प्रार्थना पर उसके पापों को क्षमा नहीं करता ग्रपितु पापों का न्याय ग्रनुसार फल देता है।

अध्यापक—ईश्वर न्यायकारी के साथ दयालु भी है। इसलिए क्या वह हम पर दया करके पापों की क्षमा नहीं कर सकता।

महात्मा—ईश्वर न्यायकारी तथा दयालु है इसीलिये वह प्रार्थना मात्र पर हमारे पापों को क्षमा नही करता। यदि वह क्षमा करे तो वह दयालु के स्थान पर शत्रु बन जागया जैसे यदि एक दयालु माँ अपने बच्चे के चोरी करने पर उसे कठोर दण्ड न दे तो वह ऐसा करके उसे पक्का चोर बनने को प्रेरित करती है। अतः उसको दण्ड देना ही हितकर है।

अध्यापक—तो पाप का क्षमा करना आप की दृष्टि में अच्छा नहीं ?

महात्मा—मेरे अच्छे बुरे लगने का प्रश्न नहीं अपितु ईश्वर मनुष्यों का भला चाहता है इसलिए ऐसा नहीं करता यदि वह पापों को क्षमा करने लगे तो फिर पाप करने से कौन डरेगा। इस प्रकार उस की क्षमा और दया पापों की वृद्धि का कारण बन जायगी।

अध्यापक—यदि प्रार्थना से पापों की मुक्ति नहीं होती तो फिर प्रार्थना से लाभ क्या ?

महात्मा—पिछले पापों से नहीं किन्तु अगले पापों से मुक्ति मिल जाती है। पूजा प्रार्थना करने वाला जब अच्छे गुणों को धारण कर लेता है तो फिर वह पापों से घृणा करने लगता है। वह फिर पाप कर्म नहीं करता। इस प्रकार पूजा-प्रार्थना मानव को पापों से मुक्त करती है।

अध्यापक—उस पूजा-पद्धति का स्वरूप व प्रकार क्या है जिसमें आप विश्वास रखने हैं ?

महात्मा—बच्चो ! हमारे वेद-शास्त्रों तथा वैदिक धर्म ने जिस पूजा-पद्धति का समर्थन किया है वह सौदेबाज़ी से सर्वथा मुक्त है, वह वैज्ञानिक होने के अतिरक्त मानव की शरीरिक, मानसिक चारित्रिक व सामाजिक, सभी प्रकार की उन्नतियों में सहायक होती है। वेद ने उसका रूप इस प्रकार बतलाया है—

स्तुति प्रार्थना उपासना

स्तुति—ईश्वर और उसके द्वारा रचित जगत् के स्वरूप व गुणों का ध्यान, मनन करना स्तुति कहाता है। यह विज्ञान का नियम है कि जो जिस प्रकार के

गुणों का लगातार ध्यान करता है वे गुण धीरे-धीरे उसके अन्दर प्रवेश करते जाते हैं। इस प्रकार स्तुति द्वारा मानव ईश्वरीय गुणों को अपने अन्दर धारण करता है और जगत् के वास्तविक स्वरूप को जान उसमें अपने निश्चित कर्तव्य व लक्ष्य को पहचानता है। प्रार्थना—प्रत्येक ज्ञान का अन्त कर्म और विज्ञान का अन्त कला होता है। स्तुति द्वारा जब ईश्वर के गुणों और सृष्टि में व्याप्त उसके विधान का ज्ञान प्राप्त हो गया तो फिर यह स्वाभाविक है कि मानव उन्हें अपने जीवन में धारण करने के लिये बेचैन हो और उसके अनुकूल आचरण करें। बस, प्रार्थना द्वारा एक व्यक्ति ईश्वरीय गुणों को प्राप्त करके अपनी अल्पज्ञता का ध्यान तथा अपने लक्ष्य प्राप्ति की कामना वाणी द्वारा बार-बार व्यक्त करता है। मनोवैज्ञानिक रूप से इससे उसे शक्ति व प्रेरणा मिलती है।

उपासना—ईश्वर के अति समीप बैठने को कहते हैं। भारतीय योग पद्धति व्यक्ति को ईश्वर के समीप बैठा देती है। यौगिक पूजा-पद्धति संसार की समस्त पूजा-पद्धतियों में वैज्ञानिक और प्रभावशाली है, यम-नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के ये आठ अंग हैं।

अध्यापक—क्या मूर्ति-पूजा वैदिक पूजा-पद्धति नहीं है?

महात्मा—वेदादि शास्त्रों में मूर्ति-पूजा का कहीं भी वर्णन व समर्थन नहीं। यह बौद्ध व जैन काल की उपज है।

अध्यापक—कुछ विद्वान् लोगों का कहना है कि मानव और मानव समाज की सेवा करना ही सर्वोत्तम पूजा-पद्धति है। आपका इस सम्बन्ध में क्या विचार है।

महात्मा—मानव या मानव समाज सेवा कर्म का फल है। बिना बीज और वृक्ष के फल की कल्पना कैसे सम्भव है? किसी भी कर्म का मूल व्यक्ति के विचार होते हैं। विचारों का मूल व्यक्ति का ज्ञान शिक्षण, चिन्तन और साधना होते हैं निश्चय ही ज्ञान शिक्षण, चिन्तन, और साधना के बिना मानव के अन्दर समाज सेवा की भावना कैसे आ सकती है? पूजा-पद्धति व्यक्ति के अन्दर ज्ञान शिक्षण, चिन्तन और साधना को जन्म देती है। इसी-लिये मानव या मावन समाज-सेवा स्तुति प्रार्थना व उपासना का स्थान कदापि नहीं ले सकती हैं। वस्तुत पूजा के बिना मानव समाज की सेवा सर्वथा असम्भव है।

अध्यापक—रूस चीन के लोग ईश्वर और उसकी पूजा, दोनों में ही, विश्वास नहीं रखते हैं; परन्तु फिर भी मानव व मानव समाज की सेवा में वे सबसे आगे हों ऐसा कैसे ?

महात्मा—आप की बात में आंशिक सत्यता है पूर्ण नहीं। रूस-चीन नास्तिक देश हैं, और किसी पूजा पद्धति में विश्वास नहीं रखते। परन्तु वह अपने स्कूल-कालेजों में बच्चों को सत्य ज्ञान, शिक्षण व साधना प्रदान करते हैं; और साथ ही डण्डे के बल पर उनसे ऐसा कराते हैं।

अध्यापक—यदि ईश्वर और पूजा के चक्कर में न पड़कर रूस-चीन की भाँति हम भी लोगों को मानव समाज की सेवा के लिए तैयार करें तो क्या हानि है ?

महात्मा—मानव स्वभाव से स्वार्थी होता है। चोरी करना बुरा है इसका ज्ञान होने पर भी यह स्वार्थवश चोरी करता है। ऐसी अवस्था में नास्तिक या अधार्मिक लोग उसे डण्डे के बल पर ही चोरी करने से रोक सकते हैं। इस प्रकार उनकी समाज-व्यवस्था का मूलाधार डण्डा होता है। डण्डे पर आधारित व्यवस्था डण्डे के द्वारा या डण्डे के दूर होते ही समाप्त हो जाती है; परन्तु पूजा द्वारा उपलब्ध मानव समाज की सेवा की भावना व्यक्ति की अन्तःप्रेरणा का परिणाम होती है, और चिरस्थायी होती है। इसलिए पूजा पद्धति का छोड़ना खतरे से सर्वथा खाली नहीं।

अध्यापक—महात्मा जी ! पूजा में ऐसी कौन विशेषता है जो मानव-समाज सेवा के लिये व्यक्ति के अन्दर स्वतः प्रेरणा उत्पन्न कर देता है पर अन्य शिक्षण नहीं कर पाता !

महात्मा—भोले अध्यापक ! यह मनोविज्ञान का साधारण नियम है कि व्यक्ति बड़े स्वार्थ के लिए छोटे स्वार्थ का सहर्ष परित्याग कर देता है। धार्मिक पूजा मानव के सम्मुख क्षणिक सांसारिक सुखों की तुलना में मोक्षका परमानन्द उपस्थित कर देती हैं जिसे व्यक्ति तुरन्त स्वीकार कर लेता है। मानव-समाज सेवा परमानन्द की प्राप्ति का साधन मात्र है। इसलिये वह इसे हृदय से अपना लेता है।

महात्मा जी के उत्तरों के पश्चात् पुनः प्रार्थना-सभा में सन्नाटा छागया। अब किसी को भी आगे प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ। महात्माजी ने मधुर मुस्कान के साथ नास्तिक अध्यापक की ओर देखा और शान्ति पाठ के साथ प्रार्थना-सभा समाप्त हुई।

७

धर्म का आदि-स्रोत

महात्मा जी के धार्मिक प्रवचनों की धूम सारे नगर में मच गई। प्रत्येक माता-पिता यह जानकर हर्षित थे कि उनका बच्चा अब धर्म का मजाक न उड़ाकर उसका सम्मान करता है। विद्यार्थियों के जीवन में ऐसा आश्चर्यजनक परिवर्तन करने वाले महापुरुष के दर्शन करने तथा उनके प्रवचन की शैली को सुनने आज अनेकों भद्र स्त्री-पुरुष प्रार्थना-सभा में उपस्थित थे। प्रार्थनासभा आज सार्वजनिक सभा का रूप धारण कर चुकी थी। स्कूल के प्रधानाचार्य अपनी योजना की सफलता पर बड़े प्रसन्न थे। उनका हर्ष तब प्रकट हुआ जब उन्होंने महात्माजी को सुन्दर पुष्पमाला पहिनाते हुए उन से प्रवचन करने की प्रार्थना की। पुष्पमाला को देखकर महात्मा जी स्वयं आश्चर्यचकित थे। इस समय विद्यार्थियों ने करतलध्वनि से आकाश को गुँजा दिया। पुष्पमाला की अपेक्षा महात्मा जी को विद्यार्थियों की कर्तल ध्वनि में अधिक सम्मान व प्रेम प्रकट हुआ। अतः उन्होंने उस प्रेम के प्रति आभार प्रदर्शन कर वेद-मन्त्रों से अपना प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा—

भारत की भावी आशाओ! मुझे हर्ष है कि आप धार्मिक चर्चा में रुचि ले रहे हैं और अपने प्रश्नों के द्वारा मेरा भी ज्ञान-वर्धन कर रहे हैं। ज्ञान के क्षेत्र में हम-आप सभी विद्यार्थी हैं; और एक-दूसरे से ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं। इस स्कूल में आप के प्रश्नों ने मेरे मस्तिष्क को कई नई दिशाओं में जाने को विवश कर दिया है। उनसे आप को लाभ हुआ या नहीं पर मुझे तो बड़ा लाभ हुआ है। इसलिए आज मैं अपना कोई विषय प्रस्तुत न कर आप पर ही छोड़ता हूँ कि आप अपनी रुचि का विषय चुन लें ताकि उस पर ही विचार-विनिमय किया जाए। इसपर कुछ देर शान्ति रही; पर इस शान्ति को भंग करते हुए एक विद्यार्थी ने खड़े हो निम्न प्रश्न किया—

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आप ने अपने प्रवचनों के प्रारम्भ में धर्म की परिभाषा करते हुए कहा था कि संसार में प्रत्येक वस्तु का अपना धर्म होता है। जिस पर उसकी स्थिति व प्रगति आधारित होती है। इसी प्रकार मानव का भी अपना एक धर्म होता है। यदि यह सत्य है तो फिर समस्त मानव-समाज का एक ही धर्म होना चाहिए ; परन्तु आज तो संसार में धर्मों की बाढ़ आई हुई है। नित्य सूर्य के उदय होने के साथ नया धर्म सामने उपस्थित हो जाता है। इन धर्मों की बहुलता का कारण क्या है ?

महात्मा—बच्चो ! मानव-धर्म तो समस्त संसार में एक ही है। यह वैज्ञानिक तथ्य है। उसे बदलना भी चाहे तो बदल नहीं सकते हैं। जैसे अग्नि का धर्म 'जलाना' सर्वत्र एक ही है। उसे कौन बदल सकता है। बदलने पर अग्नि का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार मानव-धर्म एक ही है उसे यदि कोई चाहे तो नहीं बदल सकता। बदलने पर मानव, मानव न रहकर कुछ और ही बन जायगा।

एक मानव धर्म अनेक रूपों में कैसे निर्मित हो गया है इसकी एक लम्बी कहानी है। समय की गति से जब मानव समाज ने अपने असली धर्म को भुलाकर नाना प्रकार की सामाजिक कुरीतियों को धर्म समझकर उन्हें अपना लिया तो समय-समय पर महापुरुषों ने जन्म लेकर अपनी योग्यतानुसार पुनः मानव समाज को सत्य सनातन मानव धर्म की ओर लाने का प्रयास किया। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार उन्होंने उन सचाइयों को उपस्थित किया। दुर्भाग्यवश, उनके अनुयायियों ने उसे एक नये धर्म का नाम दे दिया ; और विशेष देश, काल, परिस्थिति में कही गई बातों को समूची मानव जाति के लिए मान्य धर्म घोषित कर दिया। इसी प्रकार धर्म नहीं, अपितु मजहबों का तांता बढ़ता गया।

विद्यार्थी—आप ने उन महापुरुषों के धर्मों को मजहब का नाम क्यों दिया ?

महात्मा—यह नाम इसलिए दिया गया क्योंकि धर्म के अतिरिक्त उन्होंने अपनी मनगढन्त बातों को जोड़ दिया ; और साथ ही उन्होंने मानव-धर्म को एक विशेष देश, काल, परिस्थिति का ध्यान करते हुए ही उपस्थित किया। इसलिए वह मजहब कहलाये जा सकते है धर्म नहीं। जैसे स्वच्छ व पवित्र रहना मानव-धर्म है। पानी के अभाव में अरब वालों ने इस धर्म को

भुला दिया। हज़रत मोहम्मद साहब ने धर्म के अन्तर्गत शौच सिद्धान्त की पुन: स्थापना कर देश, काल परिस्थिति का ध्यान करते हुए वहाँ के निवासियों को सप्ताह में कम से कम एक दिन अवश्य स्नान करने का उपदेश दिया। यह उपदेश अरब के लिये तो ठीक था ; भारत में गंगा नदी के किनारे रहने वाले व्यक्ति के लिये लागू करना कहाँ तक उचित हो सकता है।

विद्यार्थी—क्या आप की दृष्टि में नये धर्म की रचना हो ही नहीं सकती ?

महात्मा—नया ही नहीं, अपितु धर्म की रचना करना मानव के सामर्थ्य से बाहर है। धर्म ईश्वर कृत होता है जो वह सृष्टि के प्रारम्भ में ही जगत् की जड़-चेतन प्रत्येक वस्तु को प्रदान करके ही उत्पन्न करता है। मानव उस धर्म को जान भर लेता है, बनाता नहीं है। जब वह अपनी ओर से नया धर्म बनाने का प्रयत्न करता है तभी अनर्थ हो जाता है। मजहब वालों ने यही करने का प्रयास किया तो धर्म के नाम पर जो कुछ काले कारनामे किये गये उनका साक्षी इतिहास है।

विद्यार्थी—सृष्टि के आदि में ईश्वर किस प्रकार धर्म का ज्ञान देता है ?

महात्मा—सृष्टि के जड़ व चेतन भागों में से चेतन तत्व को ही धर्म जानने की आवश्यकता होती है। चेतन तत्व दो भागों में विभक्त है, एक भाग पशु-पक्षियों का जिन्हें ईश्वर ने बुद्धि देकर भोगयोनि प्रदान की है और दूसरी मानव योनि जिसे बुद्धि तथा कर्म करने की स्वतंत्रता प्रदान की है। पशु-पक्षियों को तो ईश्वर ने ऐसी प्रेरणा-शक्ति दी है कि वे स्वभाव से ही अपने धर्म का पालन करते हैं वे अपने धर्म के विपरीत आचरण कभी भी नहीं करते।

मानव को धर्म-अधर्म पहचानने की बुद्धि दी गयी है ; और धर्म-अधर्म दोनों के करने की छूट है। मानव को उसके धर्म का ज्ञान ईश्वर अपनी अन्त:-प्रेरणा से करता है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! कुछ लोगों की मान्यता है कि ईश्वर ने सृष्टि के आदि में सम्पूर्ण धर्म का ज्ञान मानव को नहीं दिया अपितु समय-समय पर विशेष महापुरुषों द्वारा धर्म का ज्ञान कराता रहता है। इस प्रकार समय-समय पर संसार में नये धर्मों का उदय होता रहा। इसमें आप की क्या सम्मति है ?

महात्मा—यदि कोई राजा अपने सम्पूर्ण विधान को जनता के सम्मुख उपस्थित न कर उसके एक अंश को ही उपस्थित करे ; पर न्याय सम्पूर्ण विधान के आधार पर ही करे तो क्या आप ऐसे राजा को न्यायकारी कहेंगे ? यदि आप की बात स्वीकार करली जाये तो फिर ईश्वर न्यायकारी नहीं रहेगा। इसलिए सृष्टि के आदि में ही सम्पूर्ण धर्म का ज्ञान देना ही उसके लिए न्यायोचित और युक्तियुक्त है।

समय-समय पर ज्ञान देतेरहने की बात उन व्यक्तियों अथवा राजाओं पर लागू होती है जो अल्पज्ञ हैं ; और सम्पूर्ण सत्य को न जानने के कारण उसका कुछ अंश ही जान पाते हैं ; और धीरे-धीरे उस सत्य को पूर्णता की ओर ले जाते हैं ; परन्तु ईश्वर तो पूर्णज्ञानी है उस पर अल्पज्ञता का लांछन लगाना उचित नहीं।

ईश्वर ने जब जगत् के जड़ पदार्थों व पशु-पक्षियों को सृष्टि के प्रारम्भ में उनका सम्पूर्ण धर्म देकर उत्पन्न किया तो फिर मानव के साथ ही वह अन्याय क्यों करता ? इसलिए सृष्टि के आरम्भमें ही ईश्वर ने मानव को उसके धर्म का ज्ञान कराया, यही सत्य सिद्धान्त है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! गीता में भगवान् कृष्ण ने तो कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

जब-जब धर्म का ह्रास तथा अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मेरे जैसे महापुरुष धर्म की स्थापनार्थ संसार में आते हैं।

महात्मा—गीता का उपदेश सत्य है। इसका यही अर्थ है कि जब धर्म का ह्रास हो जाता है तो धर्म की पुनःस्थापना के लिए महापुरुष जन्म लेते हैं। इस से यह कहाँ सिद्ध होता है कि महापुरुष नये धर्म की स्थापना करते हैं।

विद्यार्थी—आप के पास इस बात का क्या प्रमाण है कि ईश्वर ने सृष्टि के आदि में ही, धर्म का सम्पूर्ण ज्ञान मानव को दिया, बाद में नहीं ?

महात्मा—इसका सब से बड़ा प्रमाण यही है कि आज तक कोई भी महापुरुष ऐसा नहीं हुआ जिसने धर्म के किसी नये सत्य की खोज की हो या नया सत्य प्रदान किया हो। हाँ, उन्होंने पुराने सत्य सनातन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को ही अपनी भाषा व शब्दों में अवश्य उपस्थित किया। क्या ऐसा करने से ही वह नया धर्म बन जाता है ?

विद्यार्थी—संसार के समस्त धर्मों का आदि-स्रोत क्या है ?

महात्मा—संसार के समस्त धर्मों का आदि-स्रोत तो परमात्मा ही है ; परन्तु सृष्टि के आदि में उसने मानव जाति को जिस धर्म का उपदेश दिया उस का नाम 'वैदिक धर्म' है। अतः वैदिक धर्म को ही समस्त धर्मों का आदि-स्रोत कहा जा सकता है। इसका प्रमाण यह है कि यही धर्म संसार का प्राचीनतम धर्म है, और इसमें वह सभी सत्य बातें विद्यमान हैं जो अन्य धर्मों में अब पायी जाती हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! क्या आप अपने पक्ष में ऐसा कोई प्रबल प्रमाण उपस्थित कर सकते हैं जिससे सिद्ध हो कि वैदिक धर्म ही समस्त धर्मों का आदि स्रोत है ?

महात्मा—सबसे बड़ा प्रबल प्रमाण यह है कि वैदिक धर्म ने धर्म के जिन दस मौलिक सिद्धान्तों को धर्म का लक्षण बताते हुए कहा है वही विश्व के सब धर्मों में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। भिन्नता केवल उन्हें उपस्थित करने के ढंग में है। अन्य बातें भी उन्होंने वैदिक धर्म से ही ग्रहण की हैं ; परन्तु उनका सही स्वरूप न जानने के कारण उन्हें अपने ढंग से उपस्थित कर दिया जिससे भ्रान्ति उत्पन्न हो गई।

यदि उपर्युक्त सचाई की परख करनी है तो समस्त धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक होगा। इससे वह तथ्य प्रत्यक्ष उपस्थित हो जायगा जिस के अनुसार वैदिक धर्म की विशिष्ट मान्यताएँ भिन्न-भिन्न देशों व कालों में विभिन्न रूप धारण करती हुई वर्तमान काल में विभिन्न मजहबों का अंग बनकर खड़ी हुई है। वह भले ही अपना जन्म-स्थान भूल गई हो, परन्तु जब तक वैदिक धर्म विद्यमान है तब तक उसकी जन्म कुण्डली का वर्णन बड़ी सरलता से हो सकता है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! धर्म के समूचे इतिहास का वर्णन करना तो इस थोड़े समय में आपके लिए कठिन होगा ; परन्तु क्या आप उस इतिहास की कुछ रूपरेखा बता सकेंगे जो हमें इस बात का परिचय दे कि सचमुच वैदिक धर्म ही समस्त धर्मों का आदि-स्रोत है।

महात्मा—बच्चो ! अपने को आधुनिक धर्म बतलाने वाले संसार में दो धर्म हैं—इसाइयत व इस्लाम। इस्लाम इन दोनों में नया है। इस्लाम धर्म के धर्म ग्रन्थों का यदि अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होता है कि वह और कुछ नहीं अपितु ईसाई धर्म का ही कुछ सुधरा हुआ रूप है। सृष्टि-रचना आदि का

वर्णन दोनों में एक सदृश है।

इसाई मत के ग्रन्थों को पढ़ने से आप इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि इसाई मत यहूदी मत का ही परिवर्तित रूप है साथ ही बौद्ध धर्म का भी उस पर गहरा प्रभाव है। यरुसलम में उस समय बौद्ध-धर्म का बहुत बड़ा मठ था, अतः उससे प्रेरणा लेना स्वाभाविक था।

यहूदी मत जर्दुश्ती मत पारसी मत का बिगड़ा हुआ रूप है। जब पारसी धर्म विकृत हो गया तो प्रतिक्रिया-स्वरूप यहूदी मत का प्रादुर्भाव हुआ।

जरदुश्त धर्म का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब ईरान में प्रचलित धर्म अनेक देवी-देवताओं को मानने लगा था। बेबीलोन में इसके पतन की चरम सीमा थी। परिणाम स्वरूप, यहूदी मत ने जन्म लिया और इसकी बुरी बातों का खण्डन किया। जिन्दावस्था धर्म ग्रन्थ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वैदिक धर्म ईरान में जाकर इसलिये विकृत हो गया क्योंकि वह अपने मूल केन्द्र से दूर होने के कारण उसके मूल स्वरूप को काल गति से भूल गया। ईरान ही क्या आज भारत में ही काल की गति से वैदिक धर्म इतना विकृत हो गया है कि इस समय अनेक अवैदिक बातों को इसके अनुयायी वैदिक मान बैठे हैं। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने उन्हीं अवैदिक बातों का खण्डन करने के लिये आर्यसमाज की स्थापना की।

आज संसार का कोई भी विद्वान् इस सचाई से इनकार नहीं कर सकता कि ईसाई, इस्लाम, यहूदी और जरदुश्त धर्म एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। इनकी अधिकांश बातें एक-दूसरे से मिलती-जुलती हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि जरदुश्त धर्म अथवा "जिन्दावस्था धर्म-ग्रन्थ" जो समस्त पाश्चात्य धर्मों का मूल है वैदिक धर्म पर ही आधारित है ?

महात्मा—जरदुश्त धर्म का मूल धर्म-ग्रन्थ जन्दावस्था स्वयं इस सचाई का प्रमाण है। जन्द भाषा में स का उच्चारण ह होता है। अतः जन्दावस्था धर्म ग्रन्थ संस्कृत भाषा व वैदिक उपदेशों से भरा पड़ा है। संस्कृत भाषा वैदिक धर्म का आधार है अतः स्वयं सिद्ध है कि जरदुश्त धर्म वैदिक धर्म से निकला है। शब्दों के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं—

जन्द भाषा	**संस्कृत भाषा**
अहमै	अस्मै
कहमै	कस्मै

जन्द भाषा	संस्कृत भाषा
यशाम	येषाम्
स्पा	श्वा
स्पानम्	श्वानम्
सुने	शुने
सुनो	शुनः
अहुर	असुर
हेना	सेना
अहमि	अस्मि
होम	सोम
माह	मास
पिदर	पितर
ब्रातर	भ्रातर

मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक धर्म ही आदि-स्रोत है। यदि अन्य धर्मों को अपने सही स्वरूपों को जानना है तो उन्हें वैदिक धर्म का अध्ययन करना चाहिए अन्यथा वह अपने धर्म-ग्रन्थ में लिखित अनेक बातों को समझ ही नहीं सकेंगे; क्योंकि उनका सही स्वरूप वैदिक धर्म के पास ही है। सृष्टि रचना, प्रलय, बलि, रोजे, ईश्वर आदि का वर्णन जो उनके धर्म-ग्रन्थों में है उसका युक्तियुक्त वर्णन वेद शास्त्रों में है।

इस प्रकार काल की गति तथा अज्ञान ने समस्त धर्मों को अलग-अलग कर दिया है! वास्तव में वे सब एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी! जब सब धर्म एक वृक्ष की शाखा मात्र हैं तो फिर आज सब एक क्यों नहीं हो जाते हैं ताकि संसार में फैली नास्तिकता व अधार्मिकता का मिलकर सामना कर सकें।

महात्मा—यदि समस्त धर्म गुरु तथा धर्मावलम्बी स्वार्थ हठ, व पक्षपात को छोड़कर बुद्धि पूर्वक सत्य मानव धर्म की खोज करें तो वे निश्चित रूप से एक सत्य पर पहुँच जायेंगे; परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो रहा है।

विद्यार्थी—क्या हम यह मानकर चलें कि वर्तमान धर्म कभी एक होंगे ही नहीं?

महात्मा—बच्चो! वर्तमान तथा-कथित धर्म अपनी इच्छा से तो एक

होंगे नहीं अपितु विज्ञान की उन्नति व उसका प्रहार जब उनके अन्ध-विश्वास को हिला डालेगा ; और उनके धार्मिक ढाँचे को ही मृत्यु के मुँह में खड़ाकर देगा फिर वह अन्ध विश्वास को छोड़ बुद्धि व तर्क का सहारा लेने पर विवश होंगे । बुद्धि व तर्क निश्चित रूप से उन्हें एक सत्य बिन्दु पर लाकर खड़ा कर देगा ; सौभाग्यवश वह समय अब आ गया है ।

घड़ी की ओर देखते ही महात्मा जी ने शान्ति पाठ के साथ अपने प्रवचन को विराम दे दिया ।

८

धर्म और विश्व शान्ति

आज की प्रार्थना-सभा ने विशाल लम्मेलन का रूप धारण कर लिया था। विद्यार्थियों से चौगुनी जनता उपस्थित थी। विवश होकर प्रधानाचार्य को उच्च ध्वनि यन्त्र व्यवस्था करनी पड़ी। महात्मा जी ने ठीक समय पर अपना वेद-पाठ प्रारम्भ कर दिया और प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा—प्यारे बच्चो ! धर्म के सम्बन्ध में यथेष्ट चर्चा हो चुकी है । यदि आपकी सम्मति हो तो अगले विषयों पर विचार किया जाये ? इतने पर एक विद्यार्थी खड़ा हुआ उसने बड़ी नम्रता से प्रार्थना करते हुए कहा—आज संसार के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या विश्व में शान्ति स्थापना की है । जब से अणु बम का आविष्कार हुआ है तब से तो समूचा संसार संकट में पड़ गया है तो क्या धर्म संसार की विश्व शान्ति में भी कोई योगदान कर सकता है ?

महात्मा जी—गत प्रवचनों में कई स्थलों पर इसका संकेत किया जा चुका है कि धर्म के बिना संसार को स्वर्ग नहीं बनाया जा सकता है । क्या फिर भी आप इस विषय पर चर्चा करना आवश्यक समझते हैं ?

विद्यार्थी—ठीक है, प्रसंगवश पहिले प्रवचनों में इसकी कुछ चर्चा हुई थी, परन्तु विषय की गम्भीरता और महत्त्व का ध्यान करते हुए थोड़ा-सा

स्पष्टीकरण आवश्यक है। इसके अतिरिक्त आज की सभा में कई राजनीतिक विचारक भी पधारे हुए हैं जिनका मत है कि धर्म भले ही व्यक्तिगत शान्ति व संतुष्टि के लिये सहायक हो; पर संसार की सामूहिक शान्ति व प्रगति के लिये कुछ नहीं कर सकता है। इसलिये उनके मन की भ्रान्ति भी दूर होनी ही चाहिए।

महात्मा—बहुत अच्छा, आज इसी विषय पर चर्चा होगी और विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य भाई-बहिनों को भी अपना प्रश्न उपस्थित करने की छूट होगी। जहाँ तक मेरा विचार है—मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि धर्म के विना विश्व-शान्ति सम्भव ही नहीं है। संसार के नेताओं की धारणा और इलाज दोनों ही अधूरे हैं। उसकी मान्यता है कि संसार में आपसी संघर्ष अथवा वर्ग संघर्ष का कारण है—आर्थिक विषमता अथवा गरीबी। आर्थिक विषमता का कारण है—अन्याय, अत्याचार व शोषण। यदि आर्थिक क्षेत्र में अन्याय, अत्याचार व शोषण को समाप्त कर विषमता का अन्त कर दिया जाय तो फिर निश्चित रूप से शान्ति की स्थापना हो जायेगी।

उनके उक्त विचार से मैं सहमत हूँ; परन्तु उनका यह विचार व समाधान कुछ अंश तक अधूरा ही है। आर्थिक विषमता समाप्त होने पर वर्ग संघर्ष समाप्त हो जायगा, यह उनका कोरा स्वप्न है। साम्प्रदायिक संघर्ष आर्थिक विषमता के कारण ही हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी मनुष्य परिस्थिति की उपज है। परिस्थिति ही व्यक्ति को चोर, डाकू, कातिल बना देती है। अतः यदि परिस्थिति को ठीक बना दिया जाय तो फिर व्यक्ति का ठीक मार्ग पर आजाना स्वाभाविक है। परिस्थिति का अच्छा-बुरा होना अर्थ पर आधारित है इसलिये यदि अर्थ की व्यवस्था उचित हो जाय तो सब कुछ ठीक हो सकता है।

महात्मा—मनुष्य केवल परिस्थिति की उपज है, यही भारी भूल है। वास्तव में मनुष्य परिस्थिति और अन्तः स्थिति दोनों की ही उपज है। इन दोनों का ही सुधार होने पर मनुष्य या मनुष्य-समाज ठीक मार्ग पर आ सकता है। यदि ऐसा नहीं है तो मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि पश्चिमी देशों तथा अफ्रीका, अमेरिका में काले-गोरे की समस्या, भारत में छूत-छात की समस्या, साम्प्रदायिक संघर्ष, तथा संसार में धर्म के नाम पर लूट-खसोट व नर-संहार परिस्थिति अथवा आर्थिक विषमता के कारण क्या थे या हैं?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपकी दृष्टि में इनका क्या कारण है ?

महात्मा—मेरी दृष्टि में इनका मूल कारण अन्तः स्थिति है। यदि मैं यह कहूँ कि आर्थिक अन्याय व शोषण भी अन्तः स्थिति का ही परिणाम है तो अत्युक्ति न होगी ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आज तो आपने एक विचित्र बात कह डाली। संसार का कोई भी अर्थशास्त्री आपकी बात से सहमत होगा, उसमें मुझे सन्देह है। क्या अपनी मान्यता की सिद्धि में कोई युक्ति उपस्थित कर सकेंगे ?

महात्मा—एक युक्ति नहीं, अनेक उपस्थित की जा सकती हैं। आपका कहना है कि परिस्थिति अथवा गरीबी के कारण व्यक्ति चोरी, डाका आदि कुकर्म करता है, तो मैं पूछना चाहता हूँ कि चार मिलों का मालिक जिसके पास अतुल धन-राशि है वह फिर चोरी क्यों करता है ? उसको कौन परिस्थिति मज़दूरों के परिश्रम की चोरी व डाका डालने पर विवश करती है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपकी दृष्टि में इसका क्या कारण है ?

महात्मा—अन्तः स्थिति ही इसका मूल कारण है। गरीबी दो प्रकार की होती है, अर्थात् भौतिक व मानसिक। भौतिक गरीबी की अपेक्षा मानसिक निर्धनता अधिक भयावह होती है। भौतिक निर्धनता को भौतिक साधनों से दूर किया जा सकता है ; परन्तु मानसिक निर्धनता को दूर करने का सामर्थ्य भौतिक साधनों में नहीं है। यह मानसिक बीमारी है इसका इलाज भी मानसिक है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपकी बात तो सत्य प्रतीत होती है ; परन्तु इस अन्तः स्थिति या मानसिक बीमारी का घुटाला समझ में नहीं आया !

महात्मा—मैंने जैसे पहले आपको बतलाया था कि प्रत्येक कर्म का मूल मानव के विचार होते हैं, विचारों का मूल उसका शिक्षण, ज्ञान, खान-पान तथा परिस्थिति होती है। यदि मानव के विचारों में दृढ़ता हो तो वह परिस्थिति को भी बदल डालता है। इसलिए मानव पर परिस्थिति की अपेक्षा उसके विचारों का अधिक प्रभाव रहता है।

विद्यार्थी—क्या आप ऐसा कोई उदाहरण दे सकेंगे जिससे आप की बात की सिद्धि हो ?

महात्मा—बच्चो ! इतिहास में अनेक उदाहरण उक्त विचार की सिद्धि

लिए भरे पड़े हैं जहाँ परिस्थिति के विपरीत मानव ने अपना मार्ग अपनाया। भगवान् राम, बुद्ध, महावीर, दयानन्द आदि अनेक महापुरुष ऐसे हुए हैं जिन्होंने राज्य तथा भौतिक वैभव को लात मारकर गरीबी, त्याग, तपस्या का वरण किया। इसके अतिरिक्त साधारण ज्वलन्त प्रमाण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर काम वासना होती है; और स्त्री के प्रति उसका स्वाभाविक आकर्षण होता है; परन्तु अन्तः स्थिति के सुदृढ़ होने के कारण वह अपनी स्त्री के अतिरिक्त अपने से बड़ी को माँ, बराबर वाली को बहिन और छोटी को बेटी के रूप में देखता है। इसके विपरीत आचरण करने का उसमें साहस नहीं होता। जो इस नियम को भंग करते हैं वे स्वयं मन ही मन अपने पर लज्जित होते हैं; और समाज में भी उनका आदर नहीं होता।

विद्यार्थी—अन्तः स्थिति का सुधार धर्म से ही होगा, वर्तमान शिक्षा पद्धति से नहीं हो सकेगा—इसमें आप की क्या युक्ति है?

महात्मा—अन्तः स्थिति अथवा विचारों के सुधार के मार्ग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार, असंतोष आदि शत्रु आते हैं। क्या वर्तमान शिक्षा पद्धति में कोई विषय ऐसा है जो इन आन्तरिक शत्रुओं का दमन कर सके। विदित हो कि संसार का विजय करना सरल है; परन्तु इन आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना बड़ा कठिन है। विद्वानों का कहना है कि जो व्यक्ति अपने इन आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है वह विश्व का विजेता स्वतः बन जाता है। धार्मिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान के बिना इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है।

विद्यार्थी—महात्मा जी! वर्तमान शिक्षा इस समस्या का समाधान करने में असमर्थ है; और धर्म समर्थ है, इसका कारण?

महात्मा—इसका मूल कारण है कि वर्तमान शिक्षा भौतिक है। यह शरीर को आधार मानकर चलती है; परन्तु अध्यात्म विद्या शरीर को साधन और आत्मा को मुख्य मानकर चलती है। इसलिए आत्मा की उपेक्षा करने वाली विद्या आत्म सम्बन्धी समस्याओं का समाधान कैसे कर सकेगी? वह तो केवल रोटी, कपड़ा तक सीमित है।

विद्यार्थी—महात्मा जी! आपने पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था कि पाश्चात्य जगत् में काले-गोरे का प्रश्न, भारत में छूत-छात तथा साम्प्रदायिक संघर्षों आदि का कारण आर्थिक नहीं अपितु आन्तरिक है। यह बात आपकी सत्य

है कि इनका कारण आर्थिक विषमता न होकर आन्तरिक भावना ही है। सो आप कृपया बतलाइये कि वह भावना क्या है? और उसका इलाज क्या है।

महात्मा—यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि मनुष्य ही क्या अपितु शेर, भेड़िये आदि भयंकर जन्तु भी अपनों को छोड़कर अन्यों पर ही आक्रमण करते हैं या उनके साथ संघर्ष व घृणा, या राग-द्वेष करते है। अपनों से प्राणी को स्वाभाविक प्यार होता ही है। यह अपनापन जितना ही सीमित होगा उतना ही संघर्ष बढ़ेगा, और इसका जितना विस्तार व फैलाव होगा उतना ही संघर्ष व शोषण समाप्त होकर प्यार का विस्तार होगा। यह सिद्धान्त विश्व-शान्ति की समस्या के समाधान की दिशा में मूल मन्त्र है। इसके समझ लेने पर शेष मार्ग स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

मानव के इस स्वार्थ अथवा अपने पन को उसके परिवार, समाज, जाति, देश तक सीमित न रखकर इसका विस्तार समूची मानव जाति ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्राणिमात्र तक कैसे कर दिया जाय यही एकमात्र प्रश्न हल करने का है।

जो नेता, समाज व संस्था मानव शरीर या भौतिक जगत को ही महत्त्व देखकर चलते हैं उनके पास इस समस्या का कोई समाधान है ही नहीं, शरीर पर आधारित समाज व्यवस्था शरीर के रंग, सौन्दर्य, बनावट, जन्म आदि से कभी मुक्त हो ही नहीं सकेगी। इसके अतिरिक्त शरीर और भोगवाद दोनों जुड़वाँ बच्चे हैं। भोगवाद स्वार्थ पर आधारित होता है, और वह इसके विस्तार के स्थान पर इसे अधिक से अधिक संकीर्णता की ओर ले जाता है। इस प्रकार भोगवाद पर आधारित समाज व्यवस्था या राजनीतिक व्यवस्था व शिक्षा विश्व शान्ति की समस्या का कदापि समाधान न कर सकेंगे।

इसका समाधान आत्मा और शरीर दोनों पर आधारित धर्म या अध्यात्म ज्ञान ही कर सकता है। अध्यात्म ज्ञान ही जब मानव को यह बतलाता है कि ईश्वर सब का पिता और पृथ्वी सब की माता है; और सबके अन्दर परम-पिता स्वयं व्यापक हैं, तो फिर मानव के लिये संसार एक परिवार का रूप धारण कर उसमें विश्व-बन्धुत्व आ जाता है, सब में परमात्मा का दर्शन कर आत्म तुल्य सम्माननीय बन जाते हैं; क्योंकि जहाँ ईश्वर विराजमान हो उसे घृणा या उसके साथ अन्याय करने का साहस कैसे किया जा सकता है!

इस प्रकार धर्म अथवा अध्यात्म ज्ञान ही विश्व शान्ति की स्थापना कर सकता है। कोरा भौतिक ज्ञान तथा डण्डा-राजनीति विश्वशान्ति की स्थापना कर सकेंगी, यह ऐसी ही कल्पना है जैसे कोई बालू से तेल निकालने का स्वप्न ले।

महात्मा जी के अन्तिम वाक्यों को सुनकर सबने हर्षित होकर तालियों की गड़गड़ाहट से उनका अभिनन्दन किया ; और शान्तिपाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हो गई।

९

धर्म और मानसिक शान्ति

महात्मा जी प्रसन्न मुद्रा में थे। यूं तो उनका जीवन ही देश के युवक-युवतियों के उत्थान में व्यतीत हुआ था ; परन्तु संन्यास लेने के पश्चात् अब प्रथम अवसर है जब वह छात्रों को उनकी ही भाषा व शैली में धर्मोपदेश दे रहे थे। मृत्यु के समीप पहुँचे वृद्ध स्त्री-पुरुष तो रात-दिन मोक्ष का टिकिट प्राप्त करने उनके चारों तरफ़ भौंरों की तरह मंडराते रहते थे। परन्तु महात्मा जी को उन्हें उपदेश देने में संतोष नहीं होता था क्योंकि वह जानते थे कि बुढ़ापे में उपदेश सुनने से अधिक भला होने की संभावना नहीं है। देश का निर्माण युवाजन अधिक कर सकते हैं। उन्हीं के जीवन में कुछ परिवर्तन लाया जाए तो वह सच्ची देशसेवा होती है। वास्तव में अच्छे या बुरे राष्ट्र का निर्माण माता की गोद में अथवा शिक्षणालयों के अन्दर गुरु के चरणों में होता है। महात्मा जी, आजकल राष्ट्र-निर्माण का सही कार्य कर रहे हैं। यही उनके आत्मसंतोष और हर्ष का कारण है।

महात्मा जी द्वारा वेद-पाठ प्रारम्भ करते ही सर्वत्र शान्ति व्याप्त हो गई। इसके बाद महात्मा जी ने विद्यार्थियों का अपनी रुचि का विषय प्रारम्भ करने का निमन्त्रण दिया। तब एक विद्यार्थी ने महात्मा जी से नम्रता से अनुरोध किया—

विद्यार्थी—श्रीमन् ! आपकी सभी बातें समझ में आ रही हैं ; और हम सब विद्यार्थियों के जीवन में एक नवीन क्रान्ति का जन्म हो रहा है। परन्तु आपकी एक बात सब किये कराये पर पानी डाल देती है। जब आप अपने सुन्दर प्रवचन के अन्त में शान्तिपाठ करते हैं तो हमारी उमड़ती हुई भावनाएं शान्त हो जाती हैं। जब आज समस्त संसार क्रान्ति अथवा प्रगति का पक्षपाती बन सर्वत्र बेचैन हो रहा है तो आप नित्य शान्ति की ही रट लगाते रहते हैं। धर्म में यही सब से बड़ा दोष है कि यह प्रगति का शत्रु है ; और लोगों को आगे बढ़ने से रोकता है। अतः या तो आप अपने शान्तिपाठ का रहस्य समझाइए अन्यथा इसका परित्याग कीजिए ?

महात्मा जी विद्यार्थी की बात सुनकर खिलखिलाकर हंस पड़े ; और बोले कि बच्चे ने आज बड़ा ही सुन्दर विषय सुझाया है। इसके लिये हम उसके आभारी हैं। इस विषय की आज बड़ी आवश्यकता है। लोगों को क्रान्ति व शान्ति के सम्बन्ध में बड़ा भारी भ्रम है। बहुधा लोग तोड़-फोड़ या उथल-पुथल को क्रान्ति समझते हैं ; और शान्ति का अर्थ प्रगति का अभाव समझते हैं। वास्तव में क्रान्ति व शान्ति एक दूसरे से अभिन्न ही हैं। इनके एक-दूसरे से अलग हो जाने पर दोनों ही निरर्थक बन जाती हैं।

क्रान्ति और शान्ति में शान्ति ही प्रमुख और क्रान्ति गौण है। क्रान्ति साधन है और शान्ति साध्य है। अतः साध्य के विना साधन का क्या महत्त्व रह जाता है। शान्ति के लिये क्रान्ति को छोड़ा जा सकता है ; परन्तु क्रान्ति के लिये शान्ति को कदापि नहीं छोड़ा जा सकता। शान्ति को छोड़ने का अर्थ होगा अराजकता व विनाश। धर्म की मानव को सबसे बड़ी देन यही है कि इसने उसे शान्ति के लक्ष्य से बाँधकर इस तक पहुँचने का सीधा और सरल मार्ग बतला दिया। धर्म को छोड़ संसार की किसी भी वस्तु में यह सामर्थ्य नहीं कि वह मानव को शान्ति प्रदान करा सके।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपकी दृष्टि में क्रान्ति व शान्ति का सही अर्थ क्या है ?

महात्मा—संस्कृत भाषा की क्रमु धातु में क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से क्रान्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ है समन्वित होना। अब मैं आप से पूछना चाहता हूँ कि यदि शान्ति को छोड़ दिया जाय और केवल क्रान्ति को ही रखा जाय तो आगे बढ़ने का क्या अर्थ होगा ? विना लक्ष्य आगे बढ़ने का क्या अर्थ है ? विना

लक्ष्य के आप यह कैसे जानेंगे कि आप आगे बढ़ रहे हैं या पीछे हट रहे हैं ; क्योंकि चलने की क्रिया दोनों में समान रूप से विद्यमान है। लक्ष्य के कारण से ही उसका नाम आगे बढ़ना या पीछे हटना हो जाता है। आप बतलाइए कि क्रान्ति अथवा आगे बढ़ने का लक्ष्य क्या होगा ?

विद्यार्थी—आगे बढ़ने का लक्ष्य होगा सुख की प्राप्ति।

महात्मा—सुख की प्राप्ति तो चोरी, डाका, व्यभिचारादि कुकर्मों से भी मिलती है, तो क्या आप इन कर्मों को क्रान्ति का नाम देंगे ?

विद्यार्थी—एक व्यक्ति को नहीं अपितु सब को सामूहिक सुख पहुँचाने वाले कार्यों को क्रान्ति नाम दिया जा सकता है ?

महात्मा—तो क्या एक व्यक्ति को शुभ कर्म के द्वारा सुख पहुँचाने को आप क्रान्ति नहीं कहेंगे ? इसके अतिरिक्त यदि एक देश अपने देश को सुखी बनाने के लिये दूसरे पड़ौसी निर्बल देश पर आक्रमण कर उसकी स्वतन्त्रता छीन उसे अपना दास बनाले तो क्या आप उसे क्रान्ति का नाम देंगे ?

विद्यार्थी—तो फिर आप किस कर्म को क्रान्ति मानते हैं ?

महात्मा—उसी कर्म को क्रान्ति का नाम दिया जा सकता है जो मानव या मानव समाज को शान्ति की प्राप्ति कराता हो ? शान्ति सुख की वह अवस्था है जहाँ दुःख की मात्रा समाप्त हो जाती है, सुख की पूर्णता का नाम शान्ति है। बहुधा जीवन में अधूरा ही सुख मिलता है। इसीलिये पूर्ण सुख की प्राप्ति के लिये ही शान्ति को लक्ष्य बनाया गया है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! पूर्ण सुख व अधूरे सुख से आपका क्या तात्पर्य है ?

महात्मा—पूर्ण सुख का अर्थ है कि मानव के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा चारों को समान रूप से सुख प्राप्त हो। यदि चारों को समान रूप से सुख प्राप्त न होकर इनमें से किसी एक को सुख मिलता है तो फिर उस सुख को अधूरा सुख कहा जाता है। जैसे एक मरीज जिसे डाक्टर ने रोटी खाने से रोका है यदि वह रात्रि में पड़ोसी के घर से चुराकर रोटी खा ले तो फिर उसका शरीर व मन भले ही सुख प्राप्त करले ; परन्तु उसका आत्मा बेचैन रहेगा।

विद्यार्थी—पूर्ण सुख अथवा शान्ति की प्राप्ति का क्या उपाय है ?

महात्मा—संसार में दूसरी बड़ी भ्रान्ति यह है कि केवल भोग-सामग्रियों की प्राप्ति से पूर्ण सुख अथवा शान्ति मिल सकती है। यदि ऐसा होता तो फिर

जिन के पास भोग सामग्री होती उन्हें कोई कष्ट न होता किन्तु देखने में आ रहा है कि जिनके पास जितने अधिक भोग साधन हैं वे उतने ही अधिक दुःखी और अशान्त हैं।

विद्यार्थी—कृपया फिर यह स्पष्ट करें कि यदि पदार्थों से शान्ति नहीं मिलती तो कैसे मिलती है? मनुष्य की अशान्ति का मूल कारण क्या है? और सच्ची शान्ति कैसे मिल सकती है?

महात्मा—मानव की आन्तरिक अशान्ति का मूल कारण है व्यक्ति के शरीर अथवा इन्द्रियों, मन, बुद्धि तथा आत्मा में समन्वय अथवा एकता का न होना। यदि इनमें समन्वय हो जाय तो फिर निर्धनता में भी मानव शान्ति की प्राप्ति कर सकता है। इस समन्वय के अभाव में सोने-चान्दी के अपार भण्डार पर बैठा हुआ व्यक्ति भी अशान्त रहेगा। बस इस समन्वय का दूसरा नाम ही शान्ति है। जैसे एक साधारण लोहे और चुम्बक पत्थर में यही अन्तर होता है कि साधारण लोहे के आन्तरिक अवयव बिखरे तथा अव्यवस्थित होते हैं; पर चुम्बक पत्थर के समस्त अवयव व्यवस्था में होते हैं। जब चुम्बक लोहे की सहायता से साधारण लोहे के अवयवों को व्यवस्थित कर दिया जाता है तो फिर वह भी चुम्बकीय लोहा बन जाता है। बस, मानव या मानव समाज के आन्तरिक अवयवों को समन्वित करने का नाम ही शान्ति है।

विद्यार्थी—महात्मा जी! व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा के समन्वित होने में कौन वस्तु बाधक है?

महात्मा—मानव के शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा, इन सबके अपने-अपने स्वार्थ हैं जो एक-दूसरे से टकराते रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, असंतोष आदि आवेग समय-समय पर आकर इन स्वार्थों को बढ़ावा देते रहते हैं। इस प्रकार मानव अन्तःकरण इन सबके स्वार्थों के टकराव व संघर्ष का अखाड़ा बना रहता है; और अपने भीतर सब कुछ रहते हुए भी मानव बेचैन रहता है।

विद्यार्थी—मानव के अवयवों के विभिन्न स्वार्थों में एकता तथा इन आवेगों को शान्त करने का क्या उपाय है?

महात्मा—केवल धर्माचरण ही इसका एकमात्र उपाय है। अर्थात् धर्म ही मानव के विभिन्न अवयवों में समन्वय स्थापित कर उक्त आवेगों के शमन करने का सामर्थ्य रखता है। धर्म मानव के अवयवों पर प्रतिबन्ध न लगाकर

उसके सम्मुख परमानन्द का प्रलोभन रख देता है जिसके लिये सब अपना-अपना स्वार्थ सहर्ष छोड़ देते हैं। जिस प्रकार एक विद्यार्थी डाक्टर या इंजीनियर बनने के लोभ से अपनी नींद, खेल आदि के प्रलोभनों का सहर्ष परित्याग कर देता है वैसे मानव के अवयव मोक्ष की प्राप्ति के लिये कर देते हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी! मुख्य बात का इलाज तो आपने बतलाया ही नहीं। शान्ति के भयंकर शत्रु काम, क्रोध, लोभ आदि का दमन कैसे किया जाय?

महात्मा—वास्तव में समस्त दुःखों का मूल अविद्या है। अविद्या दूर किये बिना व्यक्ति इन पर अधिकार कर ही नहीं सकता। तत्त्व ज्ञान के बिना अविद्या का दूर होना कठिन है। तत्त्वज्ञान धर्म ही दे सकता है अन्य नहीं। इसलिये धर्म के बिना मानसिक शान्ति प्राप्त करना कठिन है।

विद्यार्थी—महात्मा जी! तत्त्वज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये बड़ी कठिन बात है। क्या कोई ऐसा सरल उपाय भी है जिससे मानसिक शान्ति प्राप्त हो सके?

महात्मा—बच्चो! वैदिक धर्म इतना पूर्ण धर्म है कि इसमें प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति के कल्याण का मार्ग बतलाया गया है। बुद्धिमान् व्यक्ति के लिये ज्ञान मार्ग, भावुक व्यक्तियों के लिये भक्ति मार्ग तथा कर्मशील व्यक्तियों के लिये कर्म-योग बतलाया गया है। योगिराज कृष्ण ने गीता के निम्न श्लोकों में मानसिक शान्ति की प्राप्ति के लिये बड़ी ही सुन्दर व्यवस्था उपस्थित की है जिसका प्रत्येक कर्मशील क्रान्तिकारी युवाजन पालन कर सकता है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधात् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

(गीता २/६२-६३)

जब व्यक्ति विषयों का ध्यान व चिन्तन करता है तो उन भोगों के प्रति आकर्षण व प्रेम उत्पन्न हो जाता है। आकर्षण से उस भोग के लिये इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इच्छा से क्रोध को जन्म मिलता है अर्थात् इच्छा की अपूर्ति से मानव क्रोध से भड़क जाता है। क्रोध से भ्रान्ति उत्पन्न होती है, भ्रान्ति से स्मृति का नाश हो जाता है, स्मृति के नाश हो जाने पर भले-बुरे

का निर्णय करने वाली बुद्धि की समाप्ति हो जाती है। बुद्धि के विनाश से मृत्यु अथवा अशान्ति उत्पन्न हो जाती है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतराग भय क्रोध. स्थितधीर्मनिरुच्यते ॥

(गीता २/५६)

वह व्यक्ति जिसका मन व मस्तिष्क दुःख और सुख में विचलित नहीं होता, जो विषयों के पीछे नहीं भागता; और जो राग, भय, क्रोध आदि से मुक्त है उसी की बुद्धि स्थिर व शान्त रहती है।

रागद्वौंषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्वरन्।
आत्मवश्यैर्विधेवात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

गीता २। ६४

जो व्यक्ति राग-द्वेष से रहित होकर अपनी इन्द्रियों पर आत्मा द्वारा नियन्त्रण कर जीवन-मार्ग पर चलता है वही प्रसाद् अर्थात् शान्ति प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में, निष्काम कर्म करने से मनुष्य सांसारिक सुख प्राप्त करता हुआ भी शान्ति प्राप्त करता है।

विद्यार्थी—क्या हम यह समझें कि जिन लोगों का धर्म में विश्वास नहीं उन्हे शान्ति के दर्शन होना कठिन है?

महात्मा—मैंने अशान्ति का कारण और उसके उपाय बतलाये हैं। मेरा तो दृढ़-विश्वास है कि विना तत्त्व-ज्ञान के राग-द्वेष पर काबू पाना कटिन है। राग-द्वेष पर काबू पाये विना शान्ति प्राप्त करना असफल है। वस्तुतः काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार जैसे भयंकर शत्रु प्रत्येक मानव के अन्तःकरण में रहते हैं। इनका इलाज धर्म के विना विज्ञान कैसे करेगा? मुझे समझ नहीं आता? हाँ, डण्डे द्वारा लोगों को अपनी आभ्यन्तरिक अशान्ति को व्यक्त करने से रोका जा सकता है पर मानव समाज को शान्त कदापि नहीं बनाया जा सकता।

विद्यार्थी—महात्मा जी! रागद्वोष छोड़ कर कर्म करना क्या आप सरल समझते हैं? यदि नहीं, तो क्या कोई इससे सरल मार्ग शान्ति का हो सकता है?

महात्मा—हाँ बतलाया है—वह है योगमार्ग। इसके अनुसार यम-नियम, आसन, प्रणायाम, द्वारा मनुष्य अपनी इन्द्रियों तथा आवेगों पर अधिकार पा

लेता है। प्राणायाम आवेगों का शत्रु है जब कभी काम क्रोधादि आवेग का आक्रमण हो तो थोड़ा आचमन करके यदि व्यक्ति प्राणायाम करने लग जाय तो उससे तुरन्त मुक्ति मिल जाती है।

अशान्ति का मूल कारण मन की चंचलता व बेचैनी है। मन को यदि किसी प्रकार संयत कर लिया जाय तो मानसिक शान्ति स्वत: प्राप्त हो जाती है। योग शास्त्र में बतलाया गया है कि यदि व्यक्ति नित्य नियमानुसार मन की वृत्तियों को एकाग्र करने का प्रयत्न करे तो कुछ समय के पश्चात् मन पर उसका नियंत्रण हो जाता है। अनुकूल-प्रतिकूल किन्हीं प्रकार की अवस्थाओं में भी अपने को शान्त बनाने का उपाय इस साधन से हाथ में आ जाता है।

महात्माजी के द्वारा विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान करने पर सभा में शान्ति छा गई और इस शान्त वातावरण में ही महात्मा जी ने शान्ति पाठ के साथ अपना प्रवचन समाप्त किया।

१०

संसार क्या है?

प्रार्थना सभा से पूर्व आज विद्यार्थियों के एक प्रतिनिधि मंडल ने प्रधानाचार्य से अनुरोध किया कि प्रार्थना-सभा का समय कुछ बढ़ा दिया जाय ताकि महात्मा जी के प्रवचनों को अधिक समय मिल सके। प्रधानाचार्य महोदय ने प्रसन्न होकर पन्द्रह मिनिट का समय बढ़ा दिया। महात्मा जी को इसकी जानकारी नहीं थी। इसलिये सभी की दृष्टि सड़क पर लगी थी। महात्मा जी की गाड़ी आती देख विद्यार्थियों ने हर्ष ध्वनि की और उन का स्वागत किया। देरी के लिये क्षमा याचना कर महात्मा जी ने विधिवत् अपनी ज्ञान-धारा प्रवाहित करते हुये पूछा आज कौन-सा विषय लिया जाय। इस पर एक विद्यार्थी ने कहा—महाराज! धर्म पर यथेष्ठ चर्चा हो चुकी है। अब अपने मूल प्रश्न पर आने की कृपा करें अर्थात् यह संसार क्या है? इसे किसने बनाया है? इत्यादि।

महात्मा—छात्रो! संसार क्या है? देखने में यह प्रश्न बड़ा सरल व

सीधा लगता है ; आप सब यह सोचते होंगे कि संसार हमारी आँखों के सामने है ; मूर्ख-से-मूर्ख व्यक्ति भी भली प्रकार जानता है कि यह क्या है ! फिर इस पर समय क्यों नष्ट किया जाए ? पर यह प्रश्न इतना जटिल है कि सृष्टि के आदि काल से आज तक विद्वान् इसी को जानने का प्रयत्न करते आ रहे हैं; परन्तु आज भी यह प्रश्न उतना ही रहस्यमय बना है जितना कि पहले था। विज्ञान ज्यों ज्यों उन्नति करता जाता है त्यों-त्यों इसका रहस्य बढ़ता जाता है। भले ही वैज्ञानिकों ने समुद्र, पहाड़ चन्द्रमा आदि के कुछ स्वरूप को जान लिया हो ; पर जहाँ वह एक घास का पत्ता तक बनोने के रहस्य को नहीं जान सका वहाँ नक्षत्र मण्डल की अपरिमित विशालता के वह केवल किनारे पर ही बैठा है।

विश्व के प्रति अपनी कल्पना पर ही आज वैज्ञानिकों की लगभग सभी विचारधाराएँ खड़ी हैं। उनके मध्य भेद व विभिन्नता का कारण ही उनकी कल्पनाओं में मतभेद है। इसलिए जीवन क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व इसका उत्तर जान लेना प्रत्येक के लिए आवश्यक है क्योंकि इस प्रश्न के उत्तर पर उसका भावी जीवन निर्भर करता है। प्राचीन काल में इस का ज्ञान प्राप्त करना शिक्षा का अनिवार्य अंग था, परन्तु आज दुर्भाग्यवश इन प्रश्नों को निरर्थक समझ छोड़ दिया गया है। यही कारण है कि विश्व दिन प्रतिदिन लड़खड़ाता जा रहा है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आप विद्वान् व्यक्ति हैं। साधारण से साधारण बात को भी आप महत्त्वपूर्ण बनाने की क्षमता रखते हैं ; परन्तु इस साधारण प्रश्न का क्या यह उत्तर नहीं है कि यह जगत् भोग-सामग्रियों का समुच्चय है जो जीवात्मा के भोग के लिए बना है। इसके अतिरिक्त इसका क्या उत्तर है ?

महात्मा – विश्व भोग-सामग्रियों से भरा है ; और जीवात्मा के भोग के लिए बना है—यही वह दृष्टिकोण है जिसने संसार में बड़ी तबाही मचाई है। पाश्चात्य जगत् इसी भोगवादी विचारधारा का पक्षपाती है। इसी ने संसार में अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि बीमारियों को जन्म देकर वर्ग-संघर्ष, साम्राज्यवाद आदि का प्रारम्भ किया है।

विश्व भोग्य और जीवात्मा भोक्ता है—यह बात सर्वांश में सत्य नहीं है क्योंकि भोग और त्याग, विषय और कष्ट इस संसार में एक साथ जुड़े हैं। यदि भोग ही लक्ष्य होता तो फिर त्याग इसके साथ क्यों जुड़ा है। संसार के प्रत्येक भोग का अन्त त्याग में होता ही है। इसके अतिरिक्त जगत् में बुढ़ापा व

मृत्यु भी हैं जो बलात् जीवात्मा से भोगों को छीन लेते हैं। यदि भोग ही सत्य होता तो फिर त्याग, कष्ट, बुढ़ापा, मृत्यु आदि क्यों हैं ; इनके रहते पूर्वोक्त दृष्टिकोण की सत्यता कहाँ तक समुचित है ? फलतः प्रतीत होता है कि यह संसार केवल भोग नहीं अपितु इसके अतिरिक्त कुछ और भी है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आप की दृष्टि में यह जगत् क्या है ?

महात्मा—बच्चो ! इन भौतिक आँखों से देखने से यह जगत् ऐसा ही प्रतीत होता है जैसा आप कहते हैं। पर इस विश्व की तह तक पहुँचने के लिए केवल वैज्ञानिक आँखें नहीं अपितु दार्शनिक आँखें भी चाहिए। दोनों की ही सहायता से जब जगत् को देखा जायगा तभी इसका सही स्वरूप सम्मुख उपस्थित हो सकेगा। दुर्भाग्यवश, वर्तमान समय में लोगों की वैज्ञानिक आँख तो तेज हो गई ; पर उनकी दार्शनिक आँखों पर मोतियाबिन्द का जाला चढ़ गया है। इसलिए उन्हें इस संसार में भोग के अतिरिक्त कुछ दिखलाई ही नहीं देता है। वे स्वयं अपने को भी इसी रूप में देखने लग गए हैं।

यदि संसार को वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दोनों ही आँखों से एक साथ देखा जाए तो फिर जड़ प्रकृति के पीछे परमात्मा और शरीर के पीछे आत्मा दिखलाई देने लगता है ; और यह जगत् भोग के स्थान पर जीवात्मा का कर्म क्षेत्र, एवं साध्य के स्थान पर साधन प्रतीत होने लगेगा। फिर भोग त्याग, भोग कष्ट तथा बुढ़ापा मृत्यु के मेल का रहस्य प्रकट हो जाएगा। फिर त्याग और मृत्यु भयावह नहीं किन्तु प्रिय लग नेलग जाएंगी। बस, जगत् के प्रति पाश्चात्य जगत् तथा भारत के दृष्टिकोण में यही अन्तर है। इसी अन्तर ने पाश्चात्य व पूर्वीय दो अलग-अलग दर्शनों को जन्म दिया है। आज भोगवाद के बुरे परिणामों को देख पाश्चात्य जगत् भारतीय दर्शन के सम्मुख सिर झुकाने लगा है। यह भविष्य के लिए शुभ लक्षण है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! कुछ लोगों का विचार है कि संसार दुःख का सागर है। यहाँ तो दुःख ही दुःख है। सुख तो केवल मोक्ष में है।

महात्मा—जिस प्रकार भौतिकवादी लोग जगत् को केवल भौतिक आँखों से देखते हैं वैसे ही कुछ दार्शनिक इस जगत् को केवल दर्शन की आँख से देखने के आदी हैं। इसलिए भौतिकवादियों को जहाँ यह दुनियाँ भोग के अतिरिक्त कुछ नहीं प्रतीत होती वैसे ही अज्ञानी दार्शनिकों को यह संसार दुःखों से ही भरा प्रतीत होता है। वास्तव में दोनों ही दृष्टिकोण अधूरे हैं। दोनों का सम-

न्वय ही वास्तव में सत्य है।

जो जैसा होता है वैसा ही वह कर्म अथवा रचना करता है। ईश्वर को सभी आस्तिक लोग सच्चिदानन्द, अर्थात् सत्यम् शिवम्सुन्दरम् मानते हैं। जब ईश्वर स्वयं सत्य, आनन्दमय, तथा सुन्दर है तो फिर भला वह दुःखों से भरा जगत् क्यों कर बनाएगा ? इसलिए यह संसार दुःख सागर नहीं, सुख-सागर है। केवल नास्तिक व्यक्ति ही इसे दुःख सागर कह सकता है परन्तु आश्चर्य यह है कि नास्तिक इसे सुख-सागर और तथाकथित आस्तिक इसे दुःख सागर कहते हैं।

विद्यार्थी—तो क्या संसार में दुःख नहीं हैं ?

महात्मा—दुःख मानव के अपने कर्मों का फल है। ईश्वर ने तो संसार की प्रत्येक वस्तु को सुख देने के लिए बनाया है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! क्या बुढ़ापा और मृत्यु भी मानव की अपनी उपज है ?

महात्मा—बुढ़ापा, मृत्यु, वियोग, त्याग आदि इस बात के सकेत हैं कि इस संसार में केवल क्षणिक एवं सीमित सुख है ; पर इससे परे मोक्ष में परमानन्द है। अतः बुढ़ापा, मृत्यु और कष्ट मानव को परमानन्द की प्राप्ति में प्रेरक शक्ति का काम करते हैं। जैसे महर्षि दयानन्द और भगवान् बुद्ध को बुढ़ापा और मृत्यु ने ही सत्य तथा परमानन्द की खोज के लिये प्रेरित किया था। वास्तव में संसार की कठिनाइयाँ व कष्ट भी जीवात्मा की शत्रु नहीं अपितु मित्र ही हैं। कठिनाइयाँ व कष्ट ही मानव व मानव जगत् की समस्त उन्नति व प्रगति की प्रेरक शक्ति रही हैं, और रहेंगी।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! कुछ लोगों का विचार है कि ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या है—इसमें आपका क्या विचार है।

महात्मा-इस विचार में भी उपर्युक्त दोष है। यदि केवल दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो जगत् मिथ्या अथवा न ठहरने वाला या परिवर्तन शील दिखलाई देगा ; परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम इसके अस्तित्व को ही मिथ्या मान लें। संसार में जितनी परिवर्तनशीलता सत्य है उतनी ही इसकी विद्यमानता भी सत्य है। यदि कोई वस्तु विद्यमान ही नहीं है तो फिर मिथ्यात्व व परिवर्तनशीलता का दोष किस पर आरोपित होगा ? इसलिये जगत् सत्य भी है और परिवर्तनशील भी।

विद्यार्थी—महात्मा जी! अद्वैतवादियों का कहना है कि यह जगत् स्वप्नवत् भ्रममात्र है—सत्य नहीं।

महात्मा—स्वप्न बिना किसी वस्तु की सत्ता के उत्पन्न हो ही नहीं सकता है। जाग्रत अवस्था में देखी वस्तु ही स्वप्न में दिखलाई देती है। जन्मान्ध अन्धे को जिसने किसी वस्तु के स्वरूप को ही नहीं देखा है उसके स्वप्न में वह वस्तु उस रूप में कदापि दिखलाई नहीं देगी। इसलिये जगत् की सत्ता न हो और वह स्वप्न बन जाय यह बात सर्वथा असम्भव है।

यदि ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् में कुछ नहीं है, और जीवात्मा भी ब्रह्म ही हैं तो फिर जगत् एक स्वप्न और भ्रम के रूप में किस को दिखलाई दे रहा है? क्या ब्रह्म को भी भ्रान्ति होना सम्भव है? अतः यह सिद्धान्त अद्वैतवादियों की अपनी मान्यता के भी विरुद्ध है। वस्तुतः यह संसार सत्य है और परिवर्तनशील है, यही मानकर चलना ठीक है।

विद्यार्थी—उपनिषद् आदि ग्रन्थों में लिखा है कि अपनी इच्छा से ब्रह्म ही जगत् के रूप में बहुरूप हो गया और सृष्टि के अन्त में जगत् भी ब्रह्म में ही विलीन हो जायगा।

महात्मा—उपनिषदों को समझने के लिये बुद्धि की आवश्यकता है। सृष्टि से पूर्व प्रलयावस्था में जीवात्मा प्रकृति कारण रूप में ब्रह्म के गर्भ में विद्यमान रहती है। इन दोनों का सर्वथा अभाव कभी नहीं होता है। यदि अभाव हो जाय तो फिर अभाव से भाव की उत्पत्ति असम्भव है। फिर कार्य रूप सृष्टि होने पर इनकी उत्पत्ति कैसे सम्भव है। विज्ञान का नियम है कि किसी भी वस्तु का सर्वथा अभाव कभी नहीं होता। इसलिये प्रलय में जीवात्मा और प्रकृति के पूर्ण विनाश का विचार असत्य है।

विद्यार्थी—यदि इस जगत् को मिथ्या और ब्रह्म को ही सत्य मानकर चला जाय तो क्या हानि है?

महात्मा—इस सिद्धान्त को मान लेने पर मानव का अस्तित्व व प्रगति ही समाप्त हो जायगी। फिर विश्व के प्रति वैराग्य उपेक्षा व अकर्मण्यता सिर पर सवार हो जायगी। जब सब ही ब्रह्म बन गये तो फिर कौन किसको नेता मानेगा; और क्यों कोई अन्याय का विरोध करेगा; क्योंकि उस अवस्था में चोर, डाकू, आक्रमणकारी सभी ब्रह्म के रूप में दिखलाई देने लगेंगे। ब्रह्म का विरोध ब्रह्म क्यों करेंगे?

विद्यार्थी—क्या यह संसार पहला और अन्तिम है अर्थात् इससे पहिले यह नहीं था ; और अन्त में भी नहीं रहेगा ?

महात्मा - अभाव से भाव की उत्पत्ति होना असम्भव है इसे विज्ञान भी स्वीकार करता है। जब जगत् पहिले था ही नहीं तो फिर इसकी उत्पत्ति कैसे सम्भव है ; और जब इसकी सत्ता उपस्थित है तो फिर इसका सर्वथा अभाव कैसे हो सकता है ? यह दोनों ही बातें विज्ञान के विरुद्ध हैं।

विद्यार्थी—यह हो सकता है कि जगत् का बनाने वाला तत्त्व प्रकृति पहले उपस्थित हो ; और उससे जगत् बन गया हो ; और सृष्टि के अन्त में भी जगत् प्रकृति के रूप में परिणित हो जाय।

महात्मा—यह बात सत्य है कि सृष्टि के ठीक पूर्व स्थूल जगत् नहीं था और अन्त में भी स्थूल रूप में नहीं रहेगा, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि यह जगत् पहला और अन्तिम है। जिस अणुरूप प्रकृति से यह जगत् बना है यदि वह अनादि है ; और तब जगत् बनाने वाला परमात्मा भी अनादि मानना होगा तब उसकी रचना भी अनादि ही होनी चाहिये। कारण रूप अनादि प्रकृति की रचना कभी सादि नहीं हो सकती। क्योंकि इसका रचयिता ईश्वर अनादि है।

विद्यार्थी—यदि ईश्वर की सत्ता को न मानकर केवल प्रकृति की सत्ता को ही मानकर चलें तब क्या उस सिद्धान्त की सिद्धि नहीं होगी ?

महात्मा—यदि आप केवल प्रकृति को अनादि मानते हैं, और उसमें जगत् को बनाने की प्रक्रिया को स्वाभाविक मानते हो तो फिर प्रकृति का यह स्वभाव भी अनादि हो गया। ऐसी अवस्था में भी अनादि प्रकृति के अनादि स्वभाव से अनादि सृष्टियों की रचना होनी चाहिए। केवल एक की नहीं।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! कुछ लोगों का यह कहना है कि यह जगत् अनादि काल से ऐसा ही है और ऐसे ही चलता रहेगा—इसमें आपको क्या आपत्ति है ?

महात्मा—इस मान्यता का अर्थ है अपने पिता को पिता मानने मे इनकार करना। यह विचार नास्तिकों का है। नास्तिकता से जो हानियाँ सम्भव है वही इस विचार से होंगी। यह विचार इसलिये असत्य है कि विज्ञान का यह नियम है कि जहाँ वस्तुओं का मिलन है वहाँ वियोग निश्चित है। इस जगत् की रचना विभिन्न प्रकार के परमाणुओं से मिलकर हुई है। अतः इस

संयोग का आदि और अन्त दोनों ही होना निश्चित है। कोई भी संयोग अनादि कदापि नहीं हो सकता है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! जगत् में संयोग और वियोग तो नित्य होता ही रहता है ! परन्तु जगत् की सत्ता ज्यों की त्यों रहती है।

महात्मा—जिस संयोग और वियोग की ओर आपका संकेत है वह पेड़ की पत्तियों के उगने और गिरने के समान है। आपकी मान्यता है कि पेड़ की पत्तियाँ ही जन्म लेती हैं, और समाप्त हो जाती है ; परन्तु पेड़ उगता है, और कभी समाप्त नहीं होता है। यह सिद्धान्त दोगला है। यह जगत् प्रकृति का विकृति रूप है। विकृति का प्रकृति के रूप में पुनः जाना अर्थात् सृष्टि का अन्त प्रलय के रूप में होना अनिवार्य है। यह मान्यता विज्ञान व दर्शन दोनों के ही विपरीत है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपकी मान्यता क्या है।

महात्मा—वैदिक धर्म की मान्यता है कि यह सृष्टि पहले नहीं अपितु सृष्टि की अनादि शृंखला की माला के एक दाने के रूप में हैं। अर्थात् सृष्टि का बनना बिगड़ना अनादि काल से चला आ रहा है और चलता रहेगा।

विद्यार्थी—आप की मान्यता की सिद्धि में क्या प्रमाण है ?

महात्मा—ईश्वर को हम न्यायकारी मानते हैं; और यह भी मानते हैं कि यह जगत् उसने जीवात्माओं के लाभ के लिये बनाया है। हम देखते हैं कि एक जीवात्मा राजा के घर, एक भिखारी की झोंपड़ी में, एक सुन्दर शरीर वाला, एक कुरूप अपंग वाला, एक मानव के रूप में, दूसरे कीड़े-मकोड़े के रूप मे जन्म ले रहे हैं। यदि सृष्टि पहली ही है तो फिर न्यायकारी परमात्मा ने इन जीवात्माओं को इनके बिना किसी अपराध के इन्हें भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में क्यों उत्पन्न किया इसका उत्तर केवल यही है कि पूर्व जन्मानुसार ईश्वर सब प्राणियों को भिन्न-भिन्न योनियों में भेजता है।

इस प्रकार ईश्वर जीवात्मा को बार-बार इस जगत् में आकर अपनी उन्नति का पूर्ण अवसर प्रदान करता है। यदि इसी सृष्टि को आदि और अन्तिम मान लिया जाय तब जीवात्माओं को प्रगति करने से ईश्वर वंचित कर देगा। गिरे को ऊपर उठने का अवसर प्रदान करना ही ईश्वर का ईश्वरीय गुण है। इसके विपरीत आचरण होने पर ईश्वर ईश्वरत्व ही नहीं रह जायगा।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपने कहा है कि यह संसार सुन्दर है ;

परन्तु हम देखते हैं कि यह इतनी भिन्नताओं से भरा है कि इसकी कोई भी दो वस्तु आपस में नहीं मिलती, ऐसे संसार को सुन्दर कहना कहाँ तक सत्य है ?

महात्मा—भोले बच्चे ! वास्तव में भिन्नता के अन्दर ही जगत् का सौन्दर्य है यदि इसमें भिन्नता न होती तो यह रहने लायक न रहकर नरक समान बन जाता । जैसे बगीचे का सौन्दर्य उसकी विभिन्न रंगों की फुलवाड़ी में ही है । एक ही प्रकार के पौदों से भरा बगीचा लाभकर तो हो सकता है पर सुन्दर कदापि नहीं हो सकता ।

विद्यार्थी—इस सृष्टि की आयु क्या है ?

महात्मा—एक अरब सत्तानवे करोड़ उनतीस लाख उनचास हज़ार सत्तर ।

जब विद्यार्थियों की बन्दूकों की समस्त गोलियाँ समाप्त हो गईं और उनके पास महात्मा जी पर आक्रमण करने को कुछ शेष न रहा तो वे चुप हो गये सम्भवतः उनकी शंकाओं का अन्त हो गया था । महात्मा जी ने शान्तिपाठ के साथ अपना प्रवचन प्रतिदिन की तरह आज भी समाप्त किया ।

१५

किस ने........

यह ब्रह्मांड बनाया ?

आज प्रार्थना-दिवस है । विद्यार्थियों के अन्दर बड़ी भारी चहल-पहल है । चहल-पहल का मुख्य कारण यह है कि धर्म और ईश्वर की महिमा को स्कूल का एक नास्तिक अध्यापक सहन न कर सका । वह धर्म और ईश्वर को समाज का शत्रु समझता था । सो उसने निश्चय कर लिया कि महात्माजी के प्रयत्नों को असफल बनाकर उन्हें अपने प्रवचनों से रोका जाय सो उसने कुछ विद्यार्थियों

को महात्मा जी पर प्रश्न करने के लिए तैयार किया। इस कारण आज विद्यार्थियों में विशेष उत्साह था, और सभी का विश्वास था कि आज महात्माजी निश्चित रूप से पराजित हो कर जायेंगे; क्योंकि विद्यार्थियों की दृष्टि में अपने अध्यापक से अधिक बुद्धिमान् व्यक्ति अन्य कोई हो ही नहीं सकता था।

नियमानुसार वेद-पाठ के पश्चात् महात्मा जी ने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा—बच्चो! इस संसार में हमें एक बात सर्वत्र दिखलाई देती है कि प्रत्येक वस्तु के बनाने वाला कोई न कोई अवश्य है। तो क्या आप बतला सकते हैं कि इस जगत् को किसने बनाया है?

विद्यार्थी—महात्मा जी! इस जगत् को किसने बनाया है—इस प्रश्न का उत्तर यही है कि प्रकृति ने स्वयं इस जगत् को बनाया है। विज्ञान ने सप्रमाण इस बात को सिद्ध भी कर दिया है। सो इस पर दो मत नहीं हो सकते हैं।

महात्मा—चूंकि विज्ञान कहता है इसलिये आपकी बात ठीक है सो कैसे? आपको विदित होना चाहिये कि विज्ञान अभी तक सत्य के एक अंग की ही खोज कर पाया है समूचे सत्य की नहीं, इसलिए उसकी मान्यता में केवल आधा सत्य है पूर्ण नहीं। विज्ञान ने आज तक इस बात का पता लगाया है कि हवा पानी, अग्नि, आदि भौतिक तत्त्व किन परमाणुओं से मिलकर बने हैं। उसकी यह खोज बिल्कुल सत्य है; परन्तु विज्ञान अभी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाया है कि बेजान परमाणुओं को किसने हवा, पानी, पृथ्वी, अग्नि आदि के रूप में बनने को प्रेरित किया? सृष्टि में व्याप्त उन ईश्वरीय सिद्धान्तों व नियमों को जिनकी वैज्ञानिकों ने खोज की है किसने और क्यों बनाया है? सो विज्ञान अपनी खोज में जहाँ आकर रुक गया है वहाँ से आगे धर्म ने खोज की है और इन समस्त प्रश्नों के उसने उत्तर देते हुये कहा है कि ईश्वर ने ही इन समस्त परमाणुओं को विशेष नियमों के आधार पर विशेष उद्देश्य के लिये उत्पन्न किया है।

विद्यार्थी—यदि हम यह मानें कि परमाणु अपने विशेष गुण व आकर्षण के कारण स्वतः मिल गये और उनके मिलने से सृष्टि की रचना हो गई तो इसमें आपको क्या आपत्ति है?

महात्मा—पहले तो बेजान परमाणुओं में स्वतः मिलने की शक्ति नहीं। यदि आपकी बात सत्य मान ली जाय कि वह अपने विशेष गुण के कारण

आपस में मिल गये तो फिर वह उन्हें विशेष अनुपात में इस प्रकार किसने मिलाया कि उनके मिलने पर एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति करने वाली वस्तु उत्पन्न हो। परमाणुओं में बुद्धि नहीं होती यह विज्ञान मानता है। जब इनमें बुद्धि नहीं है तब इनसे बुद्धिमत्ता पूर्ण किसी वस्तु का बनना असम्भव है। उदाहरणार्थ मानव शरीर को ही लें। इसके अन्दर आँख, नाक, कान, हाथ, पैर आदि की बनावट और विशेष स्थान पर इनके स्थित होने से यह प्रकट होता है कि किसी बुद्धिमान् शक्ति ने बड़े सोच-विचार के पश्चात् किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए इनकी रचना की है। बेजान परमाणु इस प्रकार की बुद्धिमत्ता पूर्ण रचना स्वतः कर दे, यह बात कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति स्वीकार नहीं करेगा।

विद्यार्थी—विज्ञान यह मानता है कि कारण और कार्य (Cause of Effect) के सिद्धान्तानुसार अमीबा विशेष परिस्थितियों में विशेष आवश्यकताओं व विशेष प्रयत्नों के कारण अपना विकास भिन्न-भिन्न प्राणियों के रूप में प्रकट हो गया अर्थात् शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का आवश्यकतानुसार धीरे-धीरे विकास हो गया।

महात्मा—शरीर का विकास अमीबा के अन्दर विराजमान उस चेतन एवं बुद्धिमान् शक्ति की आवश्यकता व प्रयत्न से ही तो उत्पन्न हुआ। अतः इस शरीर को केवल प्रकृति की रचना कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

विद्यार्थी—अमीबा में रहने वाली चेतन व बुद्धिमान् शक्ति भी प्रकृति से ही बनी है।

महात्मा—विज्ञान का यह नियम है कि अभाव से भाव की उत्पत्ति होना असम्भव है अर्थात् जहाँ जो वस्तु नहीं है वहाँ उसकी उत्पत्ति होना असम्भव है। बेजान परमाणुओं में चेतन शक्ति है और न सोचने-विचारने की बुद्धि। सो विज्ञान के नियमानुसार जड़ प्रकृति से चेतन बुद्धिमान् शक्ति का उत्पन्न होना कठिन है।

विद्यार्थी—विज्ञान ने परमाणुओं के द्वारा चेतन शक्ति के उत्पन्न होने की बात को युक्तियों के द्वारा समझाया है।

महात्मा—यदि आपकी बात को सत्य मान भी लिया जाय तो विज्ञान के सिद्धान्तानुसार मृत्यु के पश्चात् जब शरीर को जला दिया जाता है या दफना दिया जाता है तब इस चेतन शक्ति 'जीवात्मा' की भी समाप्ति हो

जानी चाहिये ; परन्तु संसार में जीवात्माओं के पुनर्जन्म लेने का अनेकों घटनायें देखने को मिलती हैं तो फिर विज्ञान के पास उन घटनाओं का क्या उत्तर है ?

विद्यार्थी—ऐसी घटनाओं का तो विज्ञान ने आज तक कोई उत्तर नहीं दिया।

महात्मा—विज्ञान के पास इस बात का उत्तर है भी नहीं। इसके अतिरिक्त विज्ञान आज बड़े-बड़े यन्त्र, राकेट आदि बनाने में समर्थ हो गया है ; परन्तु क्या कारण है कि वह एक साधारण-सी वस्तु सिर का बाल तक नहीं बना सका। विज्ञान के पास सभी प्रकार के परमाणु उपस्थित हैं सो वह स्वयं उन वस्तुओं को अपनी परीक्षण शाला में प्रकृति की सहायता से क्यों नहीं बना लेता है जिन्हें वह स्वयं प्रकृति द्वारा बनाई स्वीकार करता है ? उन्हें बनाने में उसके पास किस शक्ति की कमी है ? मोटरों के पुर्जे वह बनाता फिरता है अपने शरीर के ही पुर्जे क्यों नहीं बना लेता है ?

विद्यार्थी—विज्ञान के पास परमाणु तो हैं ; परन्तु वह सिद्धान्त व नियम नहीं हैं जिनके सहारे वस्तुओं का निर्माण होता है।

महात्मा—उन नियमों को किसने बनाया है ? वह नियम ही ईश्वर के द्वारा उत्पन्न किये हैं। ईश्वरीय नियम ही ईश्वर की वह भुजा हैं जिनके द्वारा वह सृष्टि की रचना करता है।

विद्यार्थी– यदि यह मान लिया जाय कि प्रकृति और प्रकृति के नियम स्वाभाविक हैं तब आपके ईश्वर की कहाँ आवश्यकता पड़ती है ?

महात्मा—यदि प्रकृति और उसमें व्याप्त नियमों को स्वाभाविक मान भी लिया जाय, तो फिर इस प्रश्न का विज्ञान के पास क्या उत्तर होगा कि इन नियमों को आपस में किस शक्ति ने सम्बन्धित किया है ? आप यदि इस संसार की रचना को ध्यान से देखेंगे तो आपको पता लगेगा कि संसार के पदार्थ में व्यर्थ में ही उत्पन्न नहीं हुये हैं अर्थात् उनके उत्पन्न होने का कोई उद्देश्य है। यह समस्त वनस्पति, फल-फूल, अन्न आदि क्या अपने लिये उत्पन्न हुये हैं। यह जीवात्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उत्पन्न हुये हैं यह बात प्रत्यक्ष है। सो प्रकृति और उसके नियमों में वह कौन-सी शक्ति है जो इन वस्तुओं को किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति को सन्मुख रखकर उत्पन्न करती है। बस वह शक्ति ही ईश्वर है।

ईश्वर को किसने बनाया है ?

विद्यार्थी—मान लिया इस संसार को ईश्वर ने बनाया है, तो फिर ईश्वर को बनाने वाला कौन है ?

महात्मा—ईश्वर का बनाने वाला कोई नहीं है। वह अनादि है।

विद्यार्थी—जब संसार की सभी वस्तुओं का कोई-न-कोई बनाने वाला है तो फिर ईश्वर का बनाने वाला क्यों नहीं है ?

महात्मा—विज्ञान का यह नियम है कि वह वस्तु बनती और बिगड़ती है जो परमाणुओं के मेल से बनती है ; परन्तु जो वस्तु परमाणुओं के मेल से नहीं बनी अर्थात् वह इतनी सूक्ष्म है कि जिसका विभाजन होना असम्भव है वह वस्तु अनादि होती है। जिस प्रकार विज्ञान के अनुसार सृष्टि को बनाने वाले परमाणुओं को किसी ने नहीं बनाया वह अनादि हैं उसी आधार पर परमाणुओं से भी सूक्ष्म वस्तु परमात्मा विज्ञान के सिद्धान्तानुसार ही अनादि है अर्थात् उसके बनाने वाला कोई नहीं है।

महात्मा जी के इस उत्तर को सुनकर सभी विद्यार्थी मौन होकर आश्चर्य के साथ अपने नास्तिक अध्यापक की ओर देखने लगे। अध्यापक ने भी लज्जा से अपना सिर नीचा कर लिया। महात्मा जी ने समय को समाप्त होते देख शान्ति पाठ के साथ प्रवचन समाप्त कर दिया।

१३

ईश्वर ने ब्रह्मांड बना तो दिया किन्तु यह ब्रह्मांड बनाया क्यों ?

प्रार्थना-भवन में आज गत सप्ताहों की अपेक्षा अधिक चहल-पहल थी। नास्तिक अध्यापक गत सप्ताह अपनी असफलता का बदला आज चुकाने की पूरी योजना बना चुका था। उसने स्कूल के सबसे बुद्धिमान् बच्चे को अनेकों प्रश्न लिखा कर तैयार किया है। वह स्वयं भी उस विद्यार्थी के समीप ही बैठ गया ताकि वह समय पर नये प्रश्न उसे बतला सके।

महात्मा जी के भवन में पधारते ही सन्नाटा छा गया और एक विशेष गम्भीरता का वातावरण उत्पन्न हो गया। महात्मा जी के चेहरे पर आज अलौकिक प्रतिभा व मुस्कराहट थी। प्रश्न करने के लिए विद्यार्थियों में बेचैनी को देख उन्हें अपने मन में प्रसन्नता हो रही थी, और वह अपने प्रवचन की शैली के प्रभाव को देखकर संतुष्ट हो रहे थे। वेद-पाठ के पश्चात् जब उन्होंने विद्यार्थियों को प्रश्न करने की अनुमति दी तो स्कूल के सभी बच्चे उसी विद्यार्थी की ओर देखने लगे जिसे नास्तिक अध्यापक ने तैयार किया था। विद्यार्थी अवसर मिलते ही खड़ा हो गया और इस प्रकार महात्मा जी के सम्मुख अपनी शंका उपस्थित की—

विद्यार्थी—महात्मा जी ! सभी धर्म वाले कहते हैं कि ईश्वर सच्चिदानन्द और पूर्ण हैं तथा उसे किसी भी प्रकार की इच्छा व आवश्यकता नहीं है। क्या आप भी इस बात को स्वीकार करते हैं ?

महात्मा—हां ! मेरा भी ऐसा ही विश्वास है।

विद्यार्थी—जब ईश्वर पूर्ण है और उसे किसी प्रकार की इच्छा व आवश्यकता नहीं है तो फिर उसने इस दुनिया को क्यों बनाया है ?

महात्मा—ईश्वर ने इस जगत् को प्राणी-मात्र के कल्याण के लिए

बनाया है। अर्थात् परमात्मा ने दुनिया को इसलिए बनाया है ताकि जीवात्मा अपने पूर्व और वर्तमान कर्मानुसार फल का भोग करते हुए अपना विकास कर जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त होकर परमानन्द की प्राप्ति कर सकें।

विद्यार्थी—यदि ईश्वर दुनिया को न बनाता तो क्या हानि थी ?

महात्मा—जो पिता अपने बच्चों को उन्नति करने का अवसर नहीं देता तो वह पिता अयोग्य होता है। दूसरे जीवात्माओं के पूर्वजन्म के संचित कर्मों का अच्छा या बुरा फल वह न दे तो वह ईश्वर अन्यायी हो जायगा। तीसरे यदि परमात्मा सृष्टि की रचना न करता तो बेचारे जीवात्मा प्रलयावस्था में व्यर्थ भटकते फिरते और न वह भौतिक आनन्द ही ले पाते और न मोक्ष का आनन्द ही। वह अवस्था जीवात्माओं के लिए बड़ी ही दयनीय बन जाती।

विद्यार्थी—सृष्टि की रचना से पहिले जीवात्माओं के कर्म कहां से आ गए ?

महात्मा—इस वर्तमान सृष्टि से पहली सृष्टि में जो कर्म जीवात्माओं ने किये और जिनका फल उन्हें प्राप्त नहीं हुआ, वही कर्म उनके संचित कर्म होते हैं उन्हीं के फलों को भोगने के लिए वह दूसरी सृष्टि में जन्म लेते हैं।

विद्यार्थी—आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि जीवात्माओं के लिए ही ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है।

महात्मा—जीवात्माओं के भोग के लिए ही इस संसार की रचना परमात्मा ने की है इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि सृष्टि के जड़ पदार्थों में चेतनता होने की कोई इच्छा ही नहीं है। जीवात्मा में इच्छा व प्रयत्न दोनों हैं। वही जड़ जगत् का प्रयोग करता है उसी की सुख-सुविधा का ध्यान करते हुए इस जगत के समस्त पदार्थों को ईश्वर ने बनाया है यह प्रत्यक्ष है।

विद्यार्थी—जीवात्मा पहिली बार ही इस सृष्टि में नहीं उत्पन्न हुए ; अपने पूर्व कर्मानुसार ही इस दुनियाँ में उत्पन्न हुए हैं इसका आप के पास क्या प्रमाण है ?

महात्मा—इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि हम नित्य संसार में देखते हैं कि भिन्न-भिन्न जीवात्मा भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में जन्म लेते हैं अर्थात् कोई धनी घर में जन्म लेता है तो कोई निर्धन के घर में, कोई स्वस्थ व सुन्दर शरीर के साथ पैदा होता है तो कोई अस्वस्थ, अन्धा, लंगड़ा, अपंग

व कुरूप शरीर के साथ जन्म लेता है। यदि ये समस्त भिन्न-भिन्न अवस्थायें जीवात्माओं को उनके पूर्व जन्मानुसार प्राप्त नहीं हुयीं और इसी जन्म में ईश्वर ने उन्हें अपनी इच्छानुसार पैदा कर दिया है तो इससे ईश्वर अन्यायी सिद्ध हो जायगा।

इसके अतिरिक्त वेदों में अनेकों स्थान पर इसका समर्थन किया है। उदाहरणार्थ अथर्ववेद (११-४/२०) में इस प्रकार कहा है—

विद्यार्थी—सबसे पहिली सृष्टि में ईश्वर ने जीवात्माओं को किन अवस्थाओं में उत्पन्न किया था ? क्या उस समय सब समान अवस्था में ही उत्पन्न हुए थे ?

महात्मा—सृष्टि का कोई आदि और अन्त नहीं है। जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन आता रहा है वैसे ही सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि अनादि काल से चलते चले आ रहे हैं। जिस प्रकार एक सर्किल का आदि और अन्त नहीं होता है वैसे ही सृष्टि-क्रम का भी कोई आदि और अन्त नहीं है। यह चक्र अनादि काल से चला आ रहा है और अनादि काल तक इसी प्रकार चलता रहेगा।

विद्यार्थी—आप के पास इस बात का क्या प्रमाण है कि सृष्टि-क्रम का कोई आदि और अन्त नहीं है ?

महात्मा—जब सृष्टि को बनाने वाला परमात्मा ही अनादि है तो उसके द्वारा बनने वाली सृष्टि भी अनादि ही हो सकती है। यदि ऐसा न मानें तो फिर ईश्वर पर यह आक्षेप आ जाता है कि उसने अभी इस दुनियाँ को बनाया और पहिले क्यों नहीं बनाया ?

विज्ञान की दृष्टि से भी यह सृष्टि-क्रम अनादि ठहरता है। विज्ञान यह मानता है कि परमाणु अनादि है इसे किसी ने नहीं बनाया। परमाणु सृष्टि के नियमानुकूल मिलकर सृष्टि की रचना करते हैं। विज्ञान का दूसरा अटल सिद्धान्त यह भी है कि जहाँ मेल है वहाँ वियोग भी अवश्य है अर्थात् जो बनता है वह बिगड़ता भी अवश्य है। अतः अनादि परमाणुओं के द्वारा सृष्टि का बनना व बिगड़ना अनादि ही हो सकता है आदि नहीं।

विद्यार्थी—क्या आप कोई ऐसा प्रमाण वेद से दे सकते हैं कि ईश्वर ने इस सृष्टि को पहिली बार नहीं बनाया अपितु इस प्रकार की सृष्टि आदि काल से बनाता चला आ रहा है।

महात्मा—वेद से अनेकों प्रमाण इस पक्ष में दिये जा सकते हैं;

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आप की यह बात हमारी समझ में आ ग कि इस जगत की रचना परमात्मा ने जीवात्माओं के लिये की है; परन्तु ईश्वर ने जीवात्मा को किस लिए पैदा किया है ? अगर वह जीवात्मा को ही उत्पन्न न करता तो उसे इसके लिए इस जगत् को बनाने के झमेले में न पड़ना पड़ता।

महात्मा—प्यारे बच्चे ! जीवात्मा को ईश्वर ने उत्पन्न नहीं किया अपितु यह ईश्वर की भाँति ही अजर और अमर है। यह न कभी मरता है और न पैदा होता है। भगवान कृष्ण ने गीता में जीवात्मा के स्वरूप का अच्छा वर्णन किया है—

विद्यार्थी—जीवात्मा और जगत् को ईश्वर ने अपनी हकूमत स्थापित करने के लिए और अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करने के लिए ही उत्पन्न किया है अगर ऐसा कहा जाय तो इसके विरुद्ध आप के पास क्या उत्तर है ?

महात्मा—ईश्वर को सभी धर्म वाले प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण मानते हैं। यदि आप की बात मान ली जाय तो फिर ईश्वर में यह दोष आ जाता है कि वह अपनी हकूमत चलाने और शक्ति के प्रदर्शन करने की इच्छा रखता है। यह साधारण व्यक्ति का गुण हो सकता है ईश्वर का नहीं। इसके अलावा अपनी प्रसन्नता व शौक के लिए जीवात्मा को उत्पन्न कर उसे संसार के दुःखों में धकेलने में उसकी कोई बुद्धिमत्ता प्रकट नहीं होती है।

विद्यार्थी—जब जीवात्मा को ईश्वर ने पैदा ही नहीं किया तो फिर ईश्वर ने उसके लिए इस जगत् को क्यों बनाया ?

महात्मा—ईश्वर स्वभाव से दयालु और परोपकारी है। अतः उसने जीवात्मा पर दया करते हुए अपनी परोपकार भावना से इसकी सहायता करना उचित समझा है। यदि वह ऐसा न करता तो वह दयालु और परोपकारी नहीं रहता।

विद्यार्थी—जीवात्मा के पास किस बात की कमी है जिसके लिए ईश्वर को उस पर दया करके उसकी सहायतार्थ उसे शरीर प्रदान कर जगत् की रचना करनी पड़ी ?

महात्मा—जीवात्मा के पास परमानन्द की कमी है। वह अल्पज्ञ है

और सुख-दुःख दोनों को ही अनुभव करता है। जीवात्मा सदैव इस बात के लिए बेचैन रहता है कि वह ऐसी अवस्था कसे प्राप्त करे जहाँ आनन्द ही आनन्द हो और दुःख लेश-मात्र भी न हो। सो जीवात्मा की इसी अभिलाषा की पूर्ति में उसकी सहायतार्थ ईश्वर ने जगत् की रचना की है।

महात्मा जी के इस उत्तर को सुन विद्यार्थी चुप हो गए और समय को समाप्त होते देख महात्मा जी ने शान्ति पाठ के पश्चात् सभा विसर्जित कर दी।

१४

ईश्वर ने विश्व रचना कैसे की ?

महात्मा जी की अकाटय युक्तियों से छात्र और युवक इतने प्रभावित हो गये कि अब उनके प्रति श्रद्धा का भाव जागृत होने होने लगा। नास्तिक अध्यापक महात्मा जी के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने का एड़ी से चोटी तक प्रत्यत्न कर रहा था। हैडमास्टर महोदय जी उसके इस षडयन्त्र से परिचित हो गये थे ; परन्तु यह समझकर कि इस प्रकार शंकाओं के समाधान होने पर ही विद्यार्थियों के हृदयों में धर्म और ईश्वर के प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न हो सकेगा उन्होंने उस अध्यापक को रोकने के स्थान पर अधिक प्रोत्साहित ही किया ताकि वह समस्त सम्भव प्रश्नों को उत्पन्न कर सच्चाई को प्रकाश में लावे। अतः उसने आज अच्छा मोर्चा जमाया है और उसे विश्वास है कि आज महात्मा जी अवश्य अपनी हार स्वीकार करेंगे।

नियमानुसार महात्मा जी ने ईश-प्रार्थना के पश्चात् विद्यार्थियों को प्रश्न करने की आज्ञा दी। आज्ञा प्राप्त होते ही आज एक नया विद्यार्थी महात्मा जी से मोर्चा लेने खड़ा हो गया। नये विद्यार्थी के खड़े होने में महात्मा जी ने अपने प्रचार की सफलता अनुभव की और उसके प्रश्नों के बड़े ही मधुर शब्दों में उत्तर दिये। वार्तालाप इस प्रकार हुआ—

विद्यार्थी—आप की यह मान्यता है कि इस जगत् की रचना परमात्मा ने जीवात्मा के लिए की है। यदि इस बात को मान भी लिया जाय तो फिर यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर ने इस जगत् को किस प्रकार बनाया ?

महात्मा—इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व मैं आप को उस सिद्धान्त से परिचित कराना चाहता हूँ जो किसी वस्तु के निर्माण में काम आता है। किसी वस्तु के निर्माण में निम्न चार बातों की आवश्यकता होती है—

(१) बनाने वाला अर्थात् कार्य का करने वाला। (कर्त्ता)

(२) पदार्थ जिससे वस्तु बनाई जाय। (सामग्री)

(३) साधन व औजार जिनकी सहायता से वह वस्तु बनाई जाय।

(४) उद्देश्य जिसके लिये वह वस्तु बनाई जाय। (उद्देश्य)

सो आपके प्रश्न का पूर्ण उत्तर यह है कि ईश्वर इस जगत् का बनाने वाला है। उसने कारण प्रकृति (पदार्थ) से अपने नियमों की सहायता से इस जगत् को जीवात्मा के कल्याण के लिये बनाया।

महात्मा जी के इस उत्तर को सुनकर छात्रों में भारी खलबली मची, क्योंकि वहाँ विभिन्न धर्मों के मानने वाले विद्यार्थी बैठे थे। उन्हें महात्मा जी की यह बात सहन नहीं हुई : और उन्होंने एक-एक करके अपने प्रश्नों की झड़ी महात्मा जी पर की। इस अवस्था को देख नास्तिक अध्यापक बड़ा हर्षित हुआ। उसने समझा कि आज महात्मा जी ऐसे चक्कर में फंस गये हैं कि अब उनका इस चक्कर से निकलना असम्भव है, और अब उनका प्रभाव निश्चित रूप से समाप्त हो जायगा।

महात्मा जी ने विद्यार्थियों की बेचैनी को ताड़ते हुए कहा कि वह धैर्य के साथ अपने प्रश्न करते जाएँ; और अपने अन्ध-विश्वास के स्थान पर अपनी बुद्धि द्वारा प्रत्येक बात पर विचार करें। जो बात बुद्धि व युक्ति द्वारा असत्य सिद्ध हो उसे त्यागने में ही मानव जाति का कल्याण है। इस बात का ध्यान करते हुए ही प्रश्न करें।

एक विद्यार्थी—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है उसके लिये कोई भी बात असम्भव नहीं है। उसके लिये आपका यह कहना कि उसने प्रकृति की सहायता से जगत् को बनाया कहाँ तक सत्य है? हमारा विश्वास है कि ईश्वर ने जगत् को अपनी शक्ति से बिना किसी की सहायता के बनाया।

महात्मा—ईश्वर की शक्ति भौतिक वस्तु है या अभौतिक ?

विद्यार्थी—ईश्वर की शक्ति अभौतिक है।

महात्मा—विज्ञान का यह नियम है कि अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। सो आप यह बतलावें कि अभौतिक शक्ति में से भौतिक जगत् की उत्पत्ति किस प्रकार पैदा हो गई?

विद्यार्थी—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वह सब कुछ कर सकता है अतः वह अभौतिक शक्ति से शक्ति उत्पन्न कर सकता है।

महात्मा—जो जैसा होता है वह वैसा ही और उसी प्रकार का कार्य करता है। ईश्वर को सभी धर्मावलम्बी सत्य स्वरूप स्वीकार करते हैं। उसके बनाये जगत् में व्याप्त सत्य सिद्धान्त प्रकट करते हैं कि विश्व की प्रत्येक वस्तु निश्चित सत्य सिद्धान्तानुसार बनी है। सो इससे साफ़ प्रकट होता है कि ईश्वर सत्य और सत्य सिद्धान्तों का पालक और रक्षक है। ऐसे ईश्वर को यह कहना कि उसने विश्व को अपनी मर्जी से बिना सिद्धान्त केवल अपनी शक्ति से बना दिया उसका अपमान करना है। जो स्वयं बिना नियम व सिद्धान्त कार्य करता है वह दूसरों को नियम व सिद्धान्त पर चलने के लिये कैसे कह सकता है? ऐसे व्यक्ति के कार्य भी कभी सत्य सिद्धान्तों पर आधारित नहीं हो सकते। अतः यह कहना कि ईश्वर ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता द्वारा इच्छा मात्र से विश्व को बना दिया बड़ी भारी भूल है। कम-से-कम विज्ञान में आस्था रखने वाला विद्यार्थी कदापि इस बात को स्वीकार नहीं करेगा।

विद्यार्थी—आप सर्वशक्तिमान् का क्या अर्थ करते हैं?

महात्मा—सर्वशक्तिमान् का अर्थ है कि ईश्वर सत्य और सत्य सिद्धान्तों के आधार पर होने वाले समस्त कार्यों को करने की क्षमता रखता है। झूठ, पाप, अनाचार अनियम के आधार पर होने वाले कार्यों को वह कदापि नहीं कर सकता है। यह उसके गुण और कर्म दोनों के विपरीत है।

दूसरा विद्यार्थी—यदि यह मान किया जाय कि ईश्वर ही बहुरूप होकर जगत् के रूप में परिणित हो गया; और यह समूचा जगत् ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नहीं तो आपको क्या आपत्ति है?

महात्मा—विज्ञान का यह अटूट सिद्धान्त है कि किसी वस्तु में जो गुण होते हैं तो उसके अंश में भी वही गुण होने स्वाभाविक हैं। अगर समूचा जगत् ईश्वर का ही अंग है उसके अतिरिक्त कुछ नहीं तो जगत् की प्रत्येक

वस्तु में भी वही गुण होने चाहियें जो ईश्वर में हैं। ईश्वर सच्चिदानन्द है। इसलिये जगत् की प्रत्येक वस्तु भी सच्चिदानन्द ही होनी चाहिये; परन्तु जगत् में जड़ता, मूर्खता, अल्पज्ञता, दुःख, क्लेश आदि प्रत्यक्ष हैं जो कि ईश्वर के गुण कदापि नहीं हो सकते। इन गुणों को रखनेवाला जगत् ईश्वर का अंग कैसे सिद्ध हो सकता है।

विद्यार्थी—जड़ता, मूर्खता, दुःख आदि गुण मानव को अपनी अज्ञानता के कारण प्रतीत होते हैं। वास्तव में इनका अस्तित्व नहीं है। जैसे शीशे में अपनी शक्ल दिखलाई देती हैं, परन्तु वास्तव में उसका अस्तित्व नहीं होता है।

महात्मा—जब जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है तब जीवात्मा अर्थात् परमात्मा को भ्रान्ति का होना कैसे सम्भव हो सकता है? या तो जीवात्मा परमात्मा का अंश नहीं, यदि है तो उसे भ्रान्ति कैसे हो सकती है; क्योंकि ईश्वर को किसी भी देश-काल परिस्थिति में भ्रान्ति का होना असम्भव है। जो आपने शीशे में दिखलाई देने वाले स्वरूप की उपमा दी सो ठीक नहीं; क्यों शीशे के सम्मुख शरीर के होने पर ही शीशे में उसकी परछाई दिखलाई देती है। बिना शरीर के शीशे में परछाई दिखलाई दे ही नहीं सकती है। सत्य वस्तु शरीर की वह परछांई है, अतः झूठ, जड़ता, दुःख आदि किस पदार्थ की परछांई की भ्रान्ति हैं, जबकि ईश्वर के अतिरिक्त जगत् में कुछ है ही नहीं। ईश्वर सच्चिदानन्द है उसकी परछाई कभी असत्य, भ्रम, झूठ व क्लेश आदि नहीं हो सकती है।

विद्यार्थी—तैत्तिरीयोपनिषद् में जो यह वचन आया है कि **तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति। सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति।**

(तैति० ब्रह्मानन्दवल्ली अनु० ६)

अर्थात् परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप हो गया। सो क्या यह बात गलत है?

महात्मा—यह बात गलत नहीं अपितु समझने का फेर है। सृष्टि-रचना से पूर्व प्रलयावस्था में जीवात्मा और प्रकृति वास्तव में ईश्वर के गर्भ में स्थित होते हैं। तीनों की सत्ता होती है। जैसे, एक गर्भवती स्त्री के पेट में बच्चे की आत्मा, शरीर और अपना अस्तित्व भी रहता है वैसे ही सृष्टि के आदि में ईश्वर, जीव, प्रकृति की स्थिति है। सृष्टि-रचना के समय ईश्वर के

गर्भ से ही सृष्टि-रचना होती है। इसका यही भाव है कि ईश्वर बहुरूप हो गया।

तीसरा विद्यार्थी—यदि यह मान लिया जाय कि जगत् इसी रूप में चलता चला आ रहा है इसे कभी किसी ने नहीं बनाया तो क्या आपत्ति है ?

महात्मा—बड़ी भारी आपत्ति है। विज्ञान का नियम है कि जो वस्तु बनी है वह अवश्य बिगड़ती है अथवा समाप्त होती है। जगत् परमाणुओं के मेल से बना है। इसलिये इसका समाप्त होना अनिवार्य है। अतः यह मानना कि जगत् सदैव से ऐसा ही चला आया है और चलता रहेगा विज्ञान के सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है।

विद्यार्थी—आपके मतानुसार ईश्वर ने सृष्टि की रचना किस प्रकार की ?

महात्मा—मेरा अपना कोई मत नहीं। मैं यहाँ सत्य सनातन वैदिक धर्म के आधार पर ही अपने विचार प्रकट कर रहा हूँ। वैदिक धर्म के अनुसार सृष्टि-रचना से पूर्व जीवात्मा और प्रकृति परमात्मा की व्यवस्था में स्थिति थे। प्रकृति अपने असली सूक्ष्म स्वरूप अर्थात् सत, रज और तम परमाणुओं की साम्यावस्था में थी। जब सृष्टि रचना का समय आया तो परमात्मा ने प्रकृति में क्रिया उत्पन्न की। उस क्रिया में परमाणुओं में विशेष प्रकार की गति एवं विषमता उत्पन्न हुई और उसके पश्चात् समस्त प्रकृति में एक प्रकार का कम्पन उत्पन्न हो गया प्रकृति के परमाणु उस ईश्वरीय गति और नियमों के सहारे धीरे-धीरे विकृति अर्थात् विभिन्न रचनाओं का रूप धारण करते चले गये।

सृष्टि-रचना के क्रम को बतलाते हुये वेद कहता है कि प्रकृति में गति उत्पन्न होने से सर्व-प्रथम कोहरे के समान 'महतत्व' की उत्पत्ति हुई। महतत्व से अकहांर अर्थात् बीज रूप में अन्य भौतिक तत्व की रचना हुई, अहंकार से बीज रूप में पंच तन्मात्रायें अर्थात् शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध तत्व के रूप में उत्पन्न हुए, पंच तन्मात्राओं से आकाश वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी की क्रमशः रचना हुई पंच भूतों के पश्चात् वनस्पति जगत् की रचना, हुई, वनस्पति के पश्चात् प्राणी-जगत् प्रकट हुआ। प्राणी-जगत् की उत्पति का क्रम बतलाते हुए भी वैदिक धर्म कहता है कि अन्नमयकोष' प्राणमयकोष विज्ञानमयकोष तथा आनन्दमयकोष में क्रमशः जीवात्मा भिन्न-भिन्न प्राणियों

के रूप में प्रकट हुआ है ।

विद्यार्थी—सृष्टि-रलना का जो वैज्ञानिक स्वरूप आपने बताया है वह आपका अपना मत प्रतीत होता है । कृपया हमारी संतुष्टि के लिये वेद का प्रमाण उपस्थित कीजियेगा ।

महात्मा—सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में वेद ने विशद वर्णन किया है उसको यहाँ उपस्थित करना बड़ा कठिन है ।

महर्षि कपिल ने अपने सांख्य दर्शन अध्याय १ सूत्र में वेद के आधार पर सृष्टि-रचना का इस प्रकार वर्णन किया है—

सत्वर स्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः । प्रकृतेमहान महतो हंकारः अहंकारात्पंचतन्मात्राणि उभयमिन्द्रियं, पंच तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरुष इति पंच विश तिर्ग णः ।।

अर्थात् सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है । इस प्रकृति से पहिले महतत्व की रचना हुई, महतत्व से अहंकार, अहंकार से पंच तन्मात्राएँ तन्मात्राओं से पाँच स्थूल भूत अर्थात् आकाश वायुः अग्नि, जल एवं पृथ्वी की रचना हुई । पंच भूतों से वनस्पति औ ८ वनस्पति से प्राणि जगत् उत्पन्न हुआ ।

विद्यार्थी—आपने अपने प्रवचन के प्रारम्भ में कहा था कि किसी वस्तु को बनाने के लिये तीन बातों की आवश्यकता होती है अर्थात् बनाने वाला पदार्थ जिससे वस्तु बनाई जाय और साधन जिसकी सहायता से वस्तु बनाई जाय । यहाँ ईश्वर बनाने वाला है, प्रकृति वह पदार्थ है जिससे सृष्टि बनाई गई । सो ईश्वर के पास वह साधन कौन से हैं जिनकी सहायता से ईश्वर ने सृष्टि रचना की । निराकर ईश्वर किस प्रकार बिना शरीर और अन्य साधनों के सृष्टि की रचना कर सकता है ?

महात्मा—किसी वस्तु के बनाने में बनाने वाले को बाह्य साधनों की तभी आवश्यकता पड़ती हैं जब कि बनाने वाला और वस्तु को बनाने वाले पदार्थ के बीच फासला हो । जैसे कुर्सी को बनाने वाले बढ़ई और लकड़ी अलग अलग होते हैं इसलिये बढ़ई को कुर्सी बनाने के लिये हाथों एवं अन्य औजारों की आवश्यकता होती है, परन्तु जब बनाने वाला और पदार्थ के बीच अन्तर नहीं होता तो आवश्यकता नहीं होती है जैसे शरीर और जीवात्मा एक साथ मिलकर रहते हैं तो जब जीवात्मा शरीर के किसी भाग का

प्रयोग करना चाहता है तो फिर उसे हाथ-पैर को हिलाने के लिये बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं होती है अपितु इच्छा मात्र से उनसे वह काम ले लेता है। उसी प्रकार ईश्वर प्रकृति के अन्दर व्याप्त है और इच्छा मात्र से ही प्रकृति के द्वारा सृष्टि-रचना कर देता है।

ईश्वर के वास्तविक हाथ उसके नियम हैं। अपने नियमों के द्वारा ही वह सृष्टि की रचना का पालन और संहार करता है।

प्रश्न का उत्तर देते हुए महात्मा जी ने घड़ी को देखा और कहा कि समय अधिक हो जाने के लिये खेद है, और शान्ति-पाठ के साथ प्रवचन समाप्त हुआ।

१५

ईश्वर का स्वरूप

अन्य विषयों की अपेक्षा अब तक स्कूल के विद्यार्थियों में धर्म-विषय पर ही अधिक चर्चा होती रही। हैडमास्टर महोदय जहाँ पहिले इस बात से चिन्तित रहते थे कि बच्चों में धर्म के प्रति रुचि नहीं है वहाँ अब वह इस विचार से परेशान हैं कि यदि विद्यार्थी हर समय धर्म की ही चर्चा करते रहेंगे तो वह परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सकेंगे ; और स्कूल का परीक्षा-फल बिगड़ जायगा। फिर भी उन्हें यह संतोष था कि धार्मिक विचार बढ़ जाने से विद्यार्थियों में अनुशासन, चरित्र व सत्य की मात्रा अधिक आ रही है। इन गुणों के उत्पन्न होने पर विद्यार्थी अन्य विषयों में भी अच्छी रुचि लेंगे ; और अपना कर्त्तव्य पालन कर परीक्षा में पहले से अधिक सफलता प्राप्त करेंगे।

स्कूल के अधिकांश विद्यार्थी अब महात्मा जी के भक्त व प्रेमी बन गए थे ; और कुछ ही विद्यार्थी नास्तिक अध्यापक के चंगुल में रह गए थे। आज प्रार्थना-सभा का दिन था। कई दिनों की तैयारी के पश्चात् नास्तिक अध्यापक

आज कई विद्यार्थियों को साथ लेकर ठीक महात्मा जी के मंच के सम्मुख बैठ गया। उसे पूर्ण विश्वास था कि आज उसे अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

महात्मा जी के पहुँचते ही विद्यार्थियों ने श्रद्धा व विनम्रता से खड़े होकर उनका स्वागत किया। ईश-प्रार्थना करने के पश्चात् महात्मा जी ने मुस्कराते हुए कहा—आज किस विषय पर आक्रमण किया जायगा और कौन करेगा? इतना सुनते ही एक विद्यार्थी खड़ा हो गया और बोला कि आज ईश्वर विषय पर ही चर्चा हो; क्योंकि इसी पर संसार के अधिकांश धर्मों का आधार है। इसी के सत्य-असत्य सिद्ध होने पर अन्य बातें स्वतः सत्य-असत्य सिद्ध हो जाती हैं। अतः आप ईश्वर-सम्बन्धी निम्न प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें—

विद्यार्थी—ईश्वर क्या है?

महात्मा—संसारकी समस्त सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

विद्यार्थी—ईश्वर सब सत्य विद्याओं का आदि मूल कैसे है? प्रत्यक्ष तो यही है मानव ही समस्त संसार की सत्य विद्याओं का जन्मदाता है। इसी ने समस्त सत्य विद्याओं को पैदा किया है। स्कूल में विज्ञान, गणित, भूगोल आदि सत्य विद्याएँ वैज्ञानिकों की खोज हैं और अध्यापक हमें पढ़ाते हैं। इसमें ईश्वर का क्या हाथ है?

महात्मा—भोले विद्यार्थी! जितनी सत्य विद्याओं को आप स्कूल में पढ़ते हो उन्हें संसार के वैज्ञानिकों व विचारकों ने उत्पन्न नहीं किया अपितु खोजा है। जिस प्रकार ईश्वर अजन्मा, अमर और अनादि है उसी प्रकार उसका ज्ञान अर्थात् सत्य विद्याएँ भी अजर, अमर और अनादि हैं। सत्य-ज्ञान ईश्वर का ही अंग हैं। अतः वही इन का आदिमूल है।

विद्यार्थी—आप की दृष्टि में जो ज्ञान वैज्ञानिकों ने संसार को दिया है वह उनका नहीं अपितु ईश्वर का है। आपके पास इसका प्रमाण क्या है?

महात्मा—इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि वैज्ञानिकों ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। उन्होंने अपने ज्ञान को खोज (Discoveries) का नाम दिया है अर्थात् जो ज्ञान पहले छिपा हुआ था उसकी उन्होंने खोज की है, उसे उत्पन्न नहीं किया है। उदाहरणार्थ, यदि पृथ्वी के गर्भ में छिपे सोने की खोज करले तो वह सोने को उत्पन्न करने वाला कहा जायगा या

खोज करने वाला। बस, इसी प्रकार संसार के समस्त वैज्ञानिक सत्य-ज्ञान के खोजी हैं उत्पन्न-कर्त्ता नहीं।

विद्यार्थी—यह बात यदि स्वीकार भी कर ली जाय कि सृष्टि में छिपे सत्य-ज्ञान को वैज्ञानिकों ने उत्पन्न नहीं किया अपितु खोजा है ; तो फिर इस ज्ञान को सृष्टि के ज्ञान का आदि मूल कहना उचित है या ईश्वर को ?

महात्मा—सृष्टि का सत्य-ज्ञान मूल है आदि मूल नहीं। आदि मूल तो परमेश्वर ही है। सृष्टि के अन्दर ईश्वरीय ज्ञान नियमों व सिद्धान्तों के रूप में उपस्थित है ; और चूंकि सृष्टि के द्वारा ही वैज्ञानिकों को यह ज्ञान प्राप्त होता है इसलिए सृष्टि को इन सत्य सिद्धान्तों का मूल माना जा सकता है ; परन्तु इन समस्त ज्ञानों का आदि मूल ईश्वर ही है। प्रकृति जड़ पदार्थ है। इसमें सत्य ज्ञान को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं अपितु उस सत्य ज्ञान के सहारे प्रगति कर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। सत्य-ज्ञान ईश्वर का ही दिया हुआ है। जैसे एक मोटर के इंजन की बनावट को देखकर यदि कोई व्यक्ति मोटर का ज्ञान प्राप्त कर मोटर बनाने वाले को भूल मोटर को ही उस ज्ञान का कारण व उत्पन्न करने वाला कहने की भूल करने लगे, उसी प्रकार सृष्टि-रचना से प्राप्त ज्ञान का श्रेय उसके बनाने वाले को न देकर सृष्टि को देना कहाँ की बुद्धिमात्ता है।

विद्यार्थी—मान लिया कि सृष्टि में व्याप्त समस्त सत्य ज्ञान ईश्वर का दिया है या उत्पन्न किया है तो ईश्वर को समस्त ज्ञान का मूल कारण न कहकर आदि मूल कारण क्यों कहा है ?

महात्मा—जिस प्रकार पानी से निकली भाप की शक्ति को आधार मानकर संसार के अनेकों विद्वानों ने अनेक प्रकार के इंजनों व यन्त्रों की रचना कर डाली है। प्रत्येक इंजन ज्ञान की दृष्टि से अपनी विशेषता व जटिलता रखता परन्तु समस्त प्रकार के इंजन व यन्त्रों में मूल सिद्धान्त 'भाप का सिद्धान्त' ही मूलाधार होता है। अतः भाप-शक्ति के सिद्धान्त को उन समस्त ज्ञानों का आदि मूल कहना उचित है। दूसरा उदाहरण गणित का हमारे सम्मुख है। गणित का विशाल भवन अर्थात् इसकी समस्त शाखों को ध्यान से देखा जाय तो उन सबका आधार 'इकाई' ज्ञात होगा। यदि इकाई को गणित में से निकाल लिया जाय या इकाई का मूल्य लड़खड़ा जाय तो गणित का समूचा भवन लड़खड़ाकर गिर जायगा अर्थात् गणित के समस्त सत्य सिद्धान्त

स्वतः समाप्त हो जायेंगे।

गणित की इकाई के समान ही जगत् में व्याप्त समस्त सत्य विद्याओं व सत्य सिद्धान्तों का आधार ईश्वर ही है। ईश्वर को हटा देने पर संसार की समस्त सत्य विद्याओं का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। इसीलिये ईश्वर को समस्त सत्य विद्याओं का आदिमूल कहा गया है।

विद्यार्थी—यन्त्रों व मशीनों में भाप का सिद्धान्त तथा गणित में इकाई का सिद्धान्त आदि मूल कारण है यह बात तो प्रत्यक्ष दिखलाई देती है; परन्तु ईश्वर समस्त सत्य विद्याओं का आदि मूल है इसका आपके पास क्या प्रमाण है।

महात्मा—यन्त्र और गणित भौतिक वस्तु हैं अतः आपको प्रत्यक्ष दिखलाई देती हैं; परन्तु संसार का समस्त सत्य ज्ञान अभौतिक है और इनका आदिमूल कारण ईश्वर भी अभौतिक है। अतः इसे इन भौतिक आँखों से प्रत्यक्ष देखना कठिन है। इसे ज्ञान की आँखों से ही देखा या अनुभव किया जा सकता है। इसकी प्रत्यक्षता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि संसार की समस्त सत्य विद्याएं एक विशेष उद्देश्य रखती हैं और समस्त सत्य विद्याएं आपस में सम्बन्धित व सहयोगी हैं। यह मशीन में लगे छोटे-बड़े पुर्जे की भाँति स्थित हैं और सब मिलकर ही पूर्णता को प्राप्त होती हैं; और अपने बनाने वाले या उचित स्थान पर उपस्थित करने वाले ईश्वर पर ही निर्भर करती हैं।

विद्यार्थी—संसार की समस्त सत्य विद्याओं का आदिमूल जब ईश्वर है तो संसार के समस्त झूठ, पाप, अनाचार का आदिमूल भी ईश्वर ही होगा।

महात्मा—ईश्वर सत्य स्वरूप होने से समस्त सत्य ज्ञानों का ही आदि-मूल है झूठ और पाप का नहीं। झूठ, पाप व अनाचार का आदिमूल 'अज्ञान' है। अज्ञान जीवात्मा को ही उसकी अल्पज्ञता के कारण बाँधता है ईश्वर को नहीं।

विद्यार्थी—ईश्वर समस्त सत्य विद्याओं और जो पदार्थ सत्य विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल व आधार परमेश्वर है—क्या इस मान्यता को वेद का समर्थन प्राप्त है?

महात्मा—वेद ने सर्वत्र इस मान्यता का समर्थन किया है। कुछ प्रमाण इस प्रकार है—

(१) वेदाह सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः। सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथोयद्ब्राह्मणं महत्॥

भावार्थ—मैं समस्त सृष्टि में व्याप्त सूत्र को जानता हूँ। मैं सूत्र के अन्तर्गत सूक्ष्म रूप से व्यापक सूत्र को भी जानता हूँ, इसलिए महान् ब्रह्म को जानता हूँ। (अथर्व १०।८।३८)

(२) स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम्। स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमाविवेश। (अथर्व १०।७।३५)

भावार्थ—साम्यरूप से परमेश्वर इस त्रैलोक्य और पृथिवी दोनों को तथा अन्तरिक्ष को धारण किये हुए है। इस विश्व की ६ दिशा रूपी चक्र उसी पर आधारित हैं। वह समस्त विश्व में व्यापक है।

(३) यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्मजनाविदुः। असच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः। (अथर्व १०।७।१०)

भावार्थ—उस ब्रह्म में ही विद्वान् ब्रह्मवेत्ता सब विश्वों को स्थापित मानते हैं। स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति दोनों उसी में स्थित हैं। वह महान् देव कौन है, मुझे बताओ।

अपने पक्ष में वेद के प्रमाण उपस्थित करते हुए महात्मा जी ने घड़ी की ओर देखते हुए प्रवचन की समाप्ति कर दी और शान्ति-पाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हो गई।

१६

ईश्वर कहाँ है ?

गत सप्ताहों के प्रवचनों में ईश्वर की महिमा को सुनकर नास्तिक अध्यापक घबरा गया। ईश्दर के विरुद्ध ही वह जीवन भर बोलता रहा और उसकी विचारधारा का समूचा भवन ही नास्तिकता पर खड़ा है। अब अपने भवन को ढहता देख उसने अपनी समूची शक्ति लगाकर इसकी रक्षा करने का निश्चय कर लिया। उसने पूरे सप्ताह इसकी तैयारी की और एक विद्यार्थी को अपने सभी प्रश्नों का ज्ञान कराकर तैयार कर लिया।

आज प्रार्थना-सभा की चहल-पहल को देख महात्मा जी मन ही मन हर्षित हो रहे थे। उन्होंने ईश-प्रार्थना करते ही प्रश्नों को आमन्त्रित किया। आज्ञा मिलते ही एक विद्यार्थी खड़ा हो गया, और इस प्रकार वार्तालाप चला—

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आप ने अपने पिछले प्रवचनों में ईश्वर के बड़े गीत गाये हैं, परन्तु ईश्बर के विषय में बहुत से विद्वानों का यह मत है कि ईश्वर कुछ नहीं है वह हमारी अज्ञानता की उपज है। आपके विचार में यदि ईश्वर हो तो क्या आप बतला सकते हैं कि वह कहाँ हैं ?

महात्मा—ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। संसार का कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ ईश्वर न हो।

विद्यार्थी—यदि ईश्वर सब जगह है तो हमको दिखलाई क्यों नहीं देता है ?

महात्मा—देखने से आपका क्या तात्पर्य हैं ?

विद्यार्थी—ईश्वर हमारी आखों से क्यों नहीं दिखलाई देता है।

महात्मा—संसार के सभी पदार्थ आँखों से नहीं देखे जा सकते हैं। संसार में पदार्थों को देखने का आँख ही एक मात्र साधन नहीं है अपितु

आँख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा, बुद्धि आदि सभी देखने के साधन हैं। जैसे किसी पदार्थ में दुर्गन्ध-सुगन्धि को आप नाक से ही देख सकते हैं, गाने की मधुरता व कर्कशता को आप कान से, भोजन के स्वाद को जिह्वा से, दूध में छिपे मक्खन को आप बुद्धि से ही परख सकते हैं। संसार के समस्त भौतिक पदार्थ ही इन भौतिक इन्द्रियों से देखे जा सकते हैं अभौतिक नहीं। अपितु बुद्धि द्वारा जानने और आत्मा के द्वारा अनुभव करने या देखने की वस्तु है।

आँख, नाक, कान आदि पाँचों भौतिक इन्द्रियों द्वारा देखी बातें सत्य ही हों सों भी बात नहीं है। कभी-कभी देखने में जो बात सत्य आती है। वह वास्तव में असत्य व भ्रम मात्र होती है, और बुद्धि की सहायता से असली सत्य दिखलाई देता है। जैसे इन भौतिक आँखों से पृथ्वी शान्त व चपटी दिखलाई देती हैं और सूर्य चलता हुआ दिखलाई देता है, पर सचाई इसके सर्वथा विपरीत है अर्थात्, पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती हुई सूर्य के चारों-ओर घूम रही है और गोल है। सूर्य अपनी कीली पर घूमता हुआ अपनी जगह पर स्थिर है।

विद्यार्थी—यदि बुद्धि से ईश्वर जाना जा सकता है। तो फ़िर प्रत्येक बुद्धि रखने वाले व्यक्ति को ईश्वर क्यों नहीं दिखलाई देता ? संसार में फ़िर नास्तिक क्यों उत्पन्न हो जाते हैं ?

महात्मा—संसार में किसी पदार्थ के देखने या दिखलाई देने के कुछ सिद्धान्त है उन्हें ध्यान में रखने पर ही आप को यह समझ में आ सकेगा कि ईश्वर सब को क्यों नहीं दिखलाई देता है। जिन कारणों से कोई पदार्थ दिखलाई नहीं देता है वह निम्न प्रकार हैं—

१—स्थान की दूरी ! अर्थात्, यदि कोई पदार्थ इतनी दूरी पर स्थित है कि हमारी आँखें उसे नहीं देख सकती तो हम उसे नहीं देख सकेंगे।

२—समय की दूरी। जो पदार्थ, व्यक्ति घटना हमारे जन्म से पूर्व हो गई हैं या आगे होने को है उन्हें हम नहीं देख सकते हैं।

३—ज्ञान की दूरी। अर्थात् पदार्थ या घटना के गुणों कारणों, व स्वरूप को अर्थात् उसके सत्य ज्ञान को हम नहीं जानते तो हम उसे नहीं देख सकते हैं।

४—जो वस्तु अति सूक्ष्म है उसे भी हम नहीं देख पाते हैं।

५—जो वस्तु अति विशाल है, उसके भी सही स्वरूप को हम नहीं देख पाते हैं जैसे चिऊँटी लाख प्रयत्न करने पर भी घड़े के सही स्वरूप को और मनुष्य समस्त ब्रह्माण्ड के स्वरूप या आकाश के सही स्वरूप को नहीं देख सकता।

योग दर्शन में, इसी प्रकार, किसी वायु के न देखे जाने के हेतु बताये गये हैं।

सो ईश्वर और हमारे मध्य ज्ञान जो दूरी है और इसके अतिरिक्त वह अति सूक्ष्म और अति विशाल है इसलिये उसके सही स्वरूप को मानव नहीं देख पाता। जो व्यक्ति ज्ञान की दूरी को पार कर लेते हैं वह उसके स्वरूप की कुछ झाँकी देख व अनुभव कर पाते हैं। ईश्वर आत्मा की आखों से ही अनुभव होता है, और योगी लोग ही इसका अनुभव कर पाते हैं।

विद्यार्थी—आपके विचार में ईश्वर को देखने का योग ही एक साधन है अन्य कोई नहीं ?

महात्मा—ईश्वर को प्रत्यक्ष देखने तथा अनुभव करने का योग एक सावन है, परन्तु ईश्वर को बुद्धि द्वारा देखने के मार्ग हैं।

देखने की क्रिया में बुद्धि का योग्यतानुसार ही अन्तर होगा। जैसे, बिजली को एक वैज्ञानिक सही रूप में देखता है, क्योंकि वह उसके वास्तविक स्वरूप को जानता है, परन्तु सावारण योग्यता के व्यक्ति बिजली की सत्ता को बिजली द्वारा चलित यन्त्रों के द्वारा अनुभव कर लेते हैं। उसी प्रकार विद्वान योगी लोग ईश्वर के सही स्वरूप को जानने के कारण अपनी सावना से उसे प्रत्यक्ष देख लेते हैं और सावारण वजन के व्यक्ति ईश्वर की कृति में उसके दर्शन कर लेते हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे, पेड़-पौधे आदि सृष्टि की प्रत्येक रचना के पीछे परमात्मा के दर्शन हो जाते है -

वेद में भगवान ने स्वयं अपने देखने का ढंग बतलाते हुए इस प्रकार कहा है—

अयमस्मि जरितः पश्य मेह, विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्या दर्दिरो भुवना दर्दरीमि॥

(ऋ म० ८/१००/४)

अर्थात्—हे स्तुति करने वाले भक्त मैं प्रत्यक्ष रूप से यहाँ (सृष्टि में) हूँ। इस संसार के बीच देखने का प्रयत्न कर। अपनी बड़ी शक्ति द्वारा

समस्त उत्पन्न हुई सृष्टि पर मैं अधिष्ठाता रूप में विद्यमान हूँ ।

विद्यार्थी—बहुत से धर्मावलम्बी यह कहते हैं कि ईश्वर आकाश में कहीं रहता है; और अधिकांश लोग ईश्वर के लिये आकाश की ओर ही संकेत करते हैं । आप ईश्वर को सर्वत्र व्यापक कहते हैं सो कौन-सी बात सत्य है ?

महात्मा—आकाश खाली जगह को कहते हैं । खाली जगह में ईश्वर कहाँ रहता है या रह सकता है यह कोई नहीं बतलाता । इसके अतिरिक्त यदि हम यह स्वीकार कर भी लें कि ईश्वर आकाश में कहीं रहता है तो फिर ईश्वर एक विशेष जगह में सीमित हो जायगा । सीमित हो जाने पर फिर उसे अनादि और अनन्त कहना भूल होगी । ईश्वर को सभी धर्मवाले अनादि और अनन्त मानते हैं तो फिर अनादि और अनन्त वस्तु एक सीमित जगह में कैसे रह सकती है ? इसके अतिरिक्त सीमित हो जाने पर ईश्वर की सभी शक्तियाँ सीमित हो जाती हैं । शक्तियाँ सीमित हो जाने पर फिर ईश्वर संसार के नियन्त्रण, संरक्षण व पालन में भी असमर्थ हो जायगा ।

विद्यार्थी—जैसे एक राजा एक स्थान पर रहता हुआ अपने पूरे राज्य का नियन्त्रण, पालन व रक्षण करता है वैसे ही ईश्वर करता है ।

महात्मा—राजा तो अपने राज्य का शासन दूसरे हजारों लोगों की सहायता से करता है । यदि उसकी सहायता करन वाला अन्य कोई व्यक्ति न हों तो वह एक दिन भी शासन नहीं कर सकता है । अगर राजा की भाँति ईश्वर एक स्थान पर बैठकर शासन करेगा तो फिर उसे अपनी मदद के लिये लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की सहायता की आवश्यकता होगी । मदद करने वाले अगर चरित्र भ्रष्ट हो जाएँ तो फिर ईश्वर का शासन भी खराब हो जायगा । यही कारण है कि जिन लोगों ने ईश्वर को आकाश में माना है उन्हें ईश्वर के कामों में मदद करने के लिये, फ़रिश्तों, बेटों और पैगम्बरों की कल्पना करनी पड़ी है । जिस ईश्वर को अपने कामों में दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है वह भला किस प्रकार सर्वशक्तिमान् कहा जा सकता है ? राजा के रूप में ईश्वर के शासन करने का विचार गलत है ।

विद्यार्थी—ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, अर्थात् सब जगह विराजमान है आपके पास इसका क्या सबूत है ?

महात्मा—संसार की प्रत्येक वस्तु में निर्माण, नियन्त्रण, पालन और

संहार की क्रियाएँ प्रतिक्षण होती रहती हैं। यह सब कार्य ईश्वर ही करता है ऐसा सभी धर्मावलम्बी स्वीकार करते हैं। अतः प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का होना स्वयंसिद्ध है।

विद्यार्थी—संसार की प्रत्येक वस्तु का बनना, स्थिर रहना व विनाश होना यह सब प्राकृतिक नियमों या स्वतः स्वभाव द्वारा होता है। अतः इससे ईश्वर का होना कैसे सिद्ध होता है ?

महात्मा—भोले बच्चे ! ईश्वर के नियम ही ईश्वर के हाथ हैं। जिस प्रकार बिजली बल्ब के अन्दर उपस्थित होकर उसे चमका देती है वैसे ही ईश्वर प्रत्येक वस्तु में व्याप्त रहकर अनन्त कर्मों को करता है। ईश्वरीय नियम और ईश्वर एक-दूसरे में समाये हुए हैं अर्थात् सृष्टि के समस्त प्राकृतिक नियम ईश्वर के ही अंग हैं। वेद ने इसी ईश्वरीय शक्ति को 'ऋत' के नाम से पुकारा है।

विद्यार्थी—क्या आप वेद से ऐसे प्रमाण उपस्थित कर सकते हैं जहाँ ईश्वर को सर्वव्यापक बतलाया है।

महात्मा—वेद में सर्वत्र ही सर्वव्यापक ईश्वर का वर्णन है। आपके संतोष के लिये कुछ प्रमाण दिये देते हैं—

(१) एषोहदेवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वोहजातः स उ गर्भेऽअन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

यजु० ३२।४

वही दिव्यरूप परमात्मा सब दिशा उपदिशाओं और सब वस्तु के भीतर विद्यमान है। वह वर्तमान काल में विद्यमान है और भविष्य में भी रहेगा। वह प्रत्येक प्राणी के सम्मुख है और उसकी दृष्टि सब ओर है।

(२) सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमि सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम् ॥ (यजु० ३१।१)

वह परमात्मा सहस्र शिर अर्थात् अनन्त ज्ञान शक्ति, अनन्त दृष्टि और अनेकों रूप में व्यापक है। वह इस विश्वचक्र में सर्वत्र एक सदृश व्याप्त होकर पंच सूक्ष्म तत्वों और पंचभूतों दशों से ऊपर है।

प्रमाण उपस्थित करने के पश्चात् महात्मा जी ने अपने प्रवचन को शान्तिपाठ के साथ समाप्त कर दिया।

१७

ईश्वर के गुण और उसका स्वरूप

गत सप्ताह ईश्वर-विषय ने विद्यार्थियों की मनोभावनाओं को अत्यधिक भड़का दिया था; और सभी महात्मा जी से अपनी शंकाओं का समाधान चाहते थे। धर्म की अन्य बातों में उन्हें थोड़ा-बहुत विश्वास पहले भी था, सत्य, अहिंसा, सेवा, परोपकार आदि धर्म की बातें सभी समझदार व्यक्तियों को अच्छी लगती हैं; पर ईश्वर की सत्ता लाख समझाने पर भी उनकी समझ में नहीं आती। इसी कारण नास्तिक अध्यापक ने 'ईश्वर' विषय को गत प्रवचन में मुख्य रूप से खड़ा कराया था। इसी में उसे अपनी सफलता की आशा प्रतीत होती थी।

नित्य के अनुसार जब महात्मा जी ने विद्यार्थियों से प्रश्न करने की प्रार्थना की तो सभी विद्यार्थियों ने प्रश्न करने के लिये अपने हाथ खड़े किये। अपनी सुविधा के लिये महात्मा जी ने कहा कि सभी विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान धीरे-धीरे किया जायगा। अतः एक विषय पर जितने विद्यार्थियों की शंकाएं हों वही अपने प्रश्न उपस्थित करें, शेष आगे अवसर की प्रतीक्षा करें। ईश्वर सम्बन्धी आज क्या विषय लिया जाय यह कोई विद्यार्थी उपस्थित करे।

विद्यार्थी—महात्मा जी! गत सप्ताह आपने ईश्वर क्या है? इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट किये थे, परन्तु विषय अधूरा रह गया था। अतः आज यह बतलाइयेगा कि ईश्वर का स्वरूप व उसके गुण क्या हैं?

महात्मा—ईश्वर के गुण व स्वरूप को हम इन शब्दों में प्रकट कर सकते हैं अर्थात्—

विद्यार्थी—आपने ईश्वर के अनेक गुण बतलाते हुये ईश्वर को निराकार (Formless) कहा है। तो क्या आपके पास इस मान्यता के लिये कोई

वेद का प्रमाण है ?

महात्मा—वेद ने सर्वत्र ईश्वर के निराकार स्वरूप का ही वर्णन किया है। इसके लिये प्रत्यक्ष प्रमाण निम्न प्रकार है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषापरिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।। (यजु० ४०।८)

वह ईश्वर शरीर, नस, नाड़ी, फोड़ा, फुन्सी से रहित, सर्वथा शुद्ध, पाप रहित, सधर्म एक समान व्यापक है। वह दूरद्रष्टा, बुद्धि का भंडार, सर्वत्र अपनी शक्ति से व्यापक निरन्तर इस संसार के आदि में उत्तम प्रकार से वेद का ज्ञान देता है।

विद्यार्थी—वेद में ईश्वर को सगुण और निर्गुण नाम से पुकारा है तो क्या इससे यह सिद्ध नहीं हो जाता है कि ईश्वर साकार और निराकार दोनों हैं।

महात्मा—अपने स्वाभाविक गुण रखने से प्रत्येक वस्तु सगुण और विपरीत गुण न रखने से निर्गुण कहलाती है। सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता, दयालुता, न्याय आदि स्वाभाविक गुण ईश्वर को सगुण सिद्ध करते हैं; और इनके विपरीत अल्पज्ञता, सीमितता, क्रोध, अन्याय आदि गुण ईश्वर में न होने से वह निर्गुण कहाता है। संसार की किसी वस्तु का पूर्ण परिचय देने के लिये यही दो मार्ग हैं प्रथम उसके उन गुणों से बतलाया जाय जो उसके अन्दर स्वाभाविक हैं और दूसरा जो गुण उसमें नहीं हैं उनको भी बतला दिया जाय ताकि उस वस्तु के पूर्ण स्वरूप को समझने में भूल न हो। अतः ईश्वर के स्वरूप को समझाने के लिये उसके सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों को बतलाया गया है।

विद्यार्थी—यदि ईश्वर को शरीर वाला स्वीकार कर लिया जाय तो क्या हानि है ?

महात्मा—यदि ईश्वर को शरीर वाला स्वीकार कर लिया जाय तो फिर ईश्वर, ईश्वर ही नहीं रह जायगा। फिर उसे हम सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजन्मा, अमर, निर्विकार, अनन्त, अनादि नहीं कह सकते हैं; क्योंकि शरीर के आने से इन सभी गुणों की समाप्ति हो जाती है।

विद्यार्थी—यदि ईश्वर शरीरधारी नहीं है तो फिर उसने मनुष्यों को

अपना ज्ञान व संदेश कैसे दिया ?

महात्मा—ईश्वर को शरीरधारी मानने का कारण ही यह है कि बहुत से लोगों की बुद्धि में यह बात नहीं आई कि बिना शरीर ईश्वर अपना ज्ञान मानव जाति को कैसे देगा। ईश्वर को शरीरधारी मान लेने पर फिर लोगों को यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि अपना संदेश देने के लिये ईश्वर या तो स्वयं आवे या अपने किसी बेटे या पैगम्बर को संदेश देने के लिये भेजे सो अपनी अज्ञानता के वशीभूत होकर लोगों ने ईश्वर के स्वरूप को ही बिगाड़ दिया।

अपना ज्ञान व संदेश देने के लिये शरीर आदि वाह्य साधनों की तभी आवश्यकता होती है जब कि ज्ञान देने वाला और ज्ञान लेने वाला अलग-अलग हों; परन्तु जब ज्ञान लेने वाला और ज्ञान देने वाला एक जगह एक-दूसरे के अन्दर समाये हों तब ज्ञान देने वाले को किसी भी प्रकार के साधन की आवश्यकता नहीं होती है। उदाहरणार्थ शरीर में जीवात्मा और बुद्धि दोनों साथ-साथ रहते हैं। सो आत्मा यदि कोई बात बुद्धि को समझाना चाहे तो उसे इच्छा मात्र से ही समझा देती है। इसी प्रकार जो परमात्मा हमारी आत्मा के अन्दर ही विराजमान है उसे अपना ज्ञान देने के लिये वाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं होती है अपितु केवल इच्छा व प्रेरणा की ही आवश्यकता होती हैं।

विद्यार्थी—केवल प्रेरणा व इच्छा मात्र से एक जीव भला इतने बड़े ज्ञान को कैसे सीख सकता है ?

महात्मा—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। वह जीवात्मा में प्रेरणा करे और वह न सीखे सो हो ही नहीं सकता; परन्तु इसके अतिरिक्त ईश्वर की प्रेरणा मात्र से जीवात्मा कैसे उसे ज्ञान को जान गया, इसका दूसरा कारण यह भी है कि सृष्टि के आदि जब जीवात्मा जन्म लेते हैं तब उनमें बहुत से जीवात्मा ऐसे भी पवित्रात्मा होते हैं जो पिछले जन्म में ईश्वरीय ज्ञान से परिपूर्ण थे। सो इस जन्म में संकेत मात्र से उन्हें अपने पूर्व ज्ञान की स्मृति का जाग्रत होना स्वाभाविक है। जैसे एक बीज में वृक्ष सूक्ष्म रूप में पहले से ही विद्यमान होता है; परन्तु जब पृथ्वी के गर्भ में बैठ जाता है तब पृथ्वी माँ अपनी शक्ति से उसके उस सूक्ष्म वृक्ष का विकास कर देती है उसी प्रकार परमात्मा जीवात्मा में छिपे ज्ञान का अपनी शक्ति से प्रकाश करता है।

इसके अतिरिक्त परमात्मा ने अपना समस्त ज्ञान जगत् के कण-कण में भर दिया है और समूचा जगत् उसकी पुस्तक के समान है। सो विद्वान् लोग अपनी बुद्धि की सहायता से किसी भी क्षण उस ज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं। संसार के वैज्ञानिक सृष्टि में छिपे ईश्वरीय ज्ञान को ही तो प्राप्त करते हैं।

वेद ने ईश्वर के ज्ञान देने का इस प्रकार प्रकट किया है—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रंयत प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

(ऋ० १० । ७१ । १)

अर्थात्—सृष्टि के आरम्भ में जब मनुष्यों ने वस्तुओं के नाम रखते हुए अपनी वाणी के अग्र भाग को सबसे पहिली बार प्रेरित किया, उस समय जो कुछ उनका उत्तम व पाप रहित भाव था, वह सब उनके मन की गुफ़ा में पहिले से छिपा था। उसको उन्होंने प्रेम-पूर्वक अविष्कृत किया।

विरारामेः कर्माणियपश्यत यतो प्रहानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखाः॥ (अ० १ । २२ । ६)

सर्वव्यापक उस ब्रह्म की शक्ति को देखो और हृदय में अनुभव करो। उससे ही हृदय में शक्ति प्राप्त होती है। उत्तम गुण व्यक्ति का वह सच्चा मित्र है।

विद्यार्थी—ईश्वर जब निराकार है तो फिर अनेक धर्मतावलम्बियों ने उसकी मूर्तियाँ किस प्रकार बना ली हैं?

महात्मा—ईश्वर के भिन्न-भिन्न गुणों को लेकर विद्वान् लोगों ने ईश्वर की काल्पनिक मूर्तियाँ बना ली हैं ताकि साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति ईश्वर को प्रत्यक्ष देख सकें।

विद्यार्थी—आप के पास इस बात का क्या प्रमाण है कि प्रचलित समस्त मूर्तियाँ ईश्वर के ही भिन्न-भिन्न गुणों का प्रतीक हैं; और सब ईश्वर के ही विभिन्न स्वरूपों को प्रकट करती हैं।

महात्मा जी ने अपनी घड़ी की ओर देखते हुए कहा कि यह विषय अति गम्भीर है और समय लगभग समाप्त हो गया है। अतः इस विषय को अगले सप्ताह लेंगे। आप सब खूब तैयारी करके आवें।

शान्ति-पाठ के साथ सभा विसर्जित हुई।

१८

ईश्वर का न्याय

महात्मा जी के धार्मिक प्रवचनों के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर हैडमास्टर महोदय बड़े प्रसन्न थे। अपने कमरे में उपस्थित सभी अध्यापकों को सम्बोधित करते हुए वे बोले कि धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में महात्मा जी के विचार सचमुच युक्ति-युक्त और प्रभावशाली हैं। हमें भी कई बातों का ज्ञान नहीं था। उनके प्रवचनों से केवल विद्यार्थियों को ही नहीं अपितु हम अध्यापकों को भी बड़ा लाभ हुआ है। उन्होंने विशेष रूप से नास्तिक अध्यापक की ओर मुस्कराते हुए कहा कि "क्या अब आपके विचारों में कुछ परिवर्तन हुआ है?" नास्तिक अध्यापक ने तुरन्त उत्तर दिया कि "उसके विचारों में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और आज आप के महात्मा जी की योग्यता का पता लगेगा; और उन्हें लेने के देने पड़ जाएंगे।" हैडमास्टर जी ने हंसते हुए कहा कि आज तक तो आपके सभी हमले व्यर्थ सिद्ध हुए हैं।

हैडमास्टर साहब बातें कर ही रहे थे कि घड़ी की ओर देखते हुए बोले कि "महात्मा जी तो पहुँच गये हैं।" सभी एक साथ उठकर महात्मा जी को लेकर प्रार्थना-भवन में उपस्थित हो गये। महात्मा जी ने नियमानुसार अपना प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा कि ईश्वर-विषय में किसी को कुछ पूछना हो तो पूछो। एक लड़का खड़ा हो गया और वार्तालाप चालू हो गया।

विद्यार्थी—महात्मा जी! आपने ईश्वर की परिभाषा करते हुए कहा था कि ईश्वर दयालु और न्यायकारी है। सो यह कैसे सम्भव है? जो ईश्वर दयालु है वह न्यायकारी कैसे हो सकता है? न्यायकारी व्यक्ति तो लोगों को फाँसी की सज़ा देता है, जेल की सज़ा देता है। सो दया के रहते एक न्यायाधीश इस प्रकार के कठोर कार्य कैसे करेगा?

महात्मा—प्यारे बालक! दयालु व्यक्ति ही सच्चा न्यायकारी हो सकता

है। कठोर, हृयदहीन व्यक्ति सच्चा न्यायकारी हो ही नहीं सकता है। न्यायाधीश तभी सच्चा न्याय कर सकता है जब उसके हृदय में दूसरों के कल्याण और दया की भावना होगी। उसके द्वारा दी जाने वाली सजा भी दोषी के लिये उसके हृदय में व्याप्त कल्याण और दया का ही परिणाम होती है। यदि वह दोषी को सज़ा न देकर उसे छोड़ दे तो यह उसकी झूठी दया होगी; और इससे अपराधी का कल्याण न होकर अकल्याण ही होगा।

विद्यार्थी— अपराधी को क्षमा करने में दया नहीं और उसे सज़ा देने में दया है, यह आपकी युक्ति विचित्र है इसे कोई भी समझदार व्यक्ति स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा।

महात्मा—किसी वस्तु या कार्य के बाह्य रूप को देखकर ही उसे अच्छा या बुरा समझना भूल है। किसी कार्य का अच्छा या बुरा होना उस कार्य के पीछे कर्त्ता की भावना पर ही निर्भर करता है। जैसे एक डाक्टर मरीज़ का जब आपरेशन करता है तब एक ओर मरीज़ को रोने और दूसरी ओर उसके शरीर की चीर-फाड़ करने वाले डाक्टर के छुरे को देखकर एक अज्ञानी व्यक्ति को तो डाक्टर एक राक्षस ही प्रतीत होगा; परन्तु वास्तविकता इसके सर्वथा विपरीत है। इसी प्रकार जब हैडमास्टर साहब परीक्षा में अयोग्य विद्यार्थी को अनुत्तीर्ण घोषित करते हैं तो बहुत से मूर्ख हैडमास्टर को कठोर व हृदयहीन समझने की भूल करते हैं; वस्तुतः देखा जाए तो अयोग्य बच्चे को फेल करने में ही बच्चे का कल्याण है और इसी से बच्चे के प्रति हैडमास्टर के हृदय में उसके लियें प्रेम, दया व कल्याण की भावना सिद्ध होती है। यदि वह झूठी दया के वशीभूत हो बच्चे को सफल घोषित कर दे तो वह विद्यार्थी का सबसे बड़ा शत्रु सिद्ध होगा, विद्यार्थी फिर अपने जीवन में कभी उन्नति न कर सकेगा।

ठीक डाक्टर और हैडमास्टर की भाँति ही ईश्वर अपनी दया के वशीभूत दोषी जीवात्मा को उसके कल्याण की दृष्टि से दण्ड देता है।

विद्यार्थी—डाक्टर और मास्टर के कार्यों के पीछे तो दया प्रत्यक्ष दिखलाई देती है; परन्तु ईश्वर के दण्ड के पीछे दया कहाँ दिखलाई देती है? वहाँ तो कष्ट ही कष्ट दिखलाई देते हैं।

महात्मा—जिस प्रकार साबुन कपड़े के मैल को दूर कर देता है वैसे ही ईश्वर द्वारा दिये गये दण्ड स्वरूप कष्टों से मानव के हृदय में उपस्थित पापों

के संस्कार साफ़ होकर मानव पवित्र बनता है। कष्ट व विपत्तियाँ ही वास्तव में मानव की मित्र होती हैं। यही मानव को मानव बनाती हैं और इसके अन्दर छिपी शक्तियों को विकसित होने को बाध्य करती हैं। यदि संसार की समस्त उन्नति का विश्लेषण किया जाय तो इसका प्रमुख कारण कष्ट, विपत्तियाँ, दुःख आदि ही मिलेंगी। अतः ईश्वर द्वारा दिया गया दण्ड विपत्तियों व कष्टों के रूप में मानव जाति को विकसित करने वाला होता है।

विद्यार्थी—आपके पास क्या प्रमाण है कि ईश्वर न्याय करता है ?

महात्मा—हम नित्य देखते हैं कि जीवात्मा स्वस्थ-अस्वस्थ अवस्थाओं में और धनी और निर्धन परिवारों में जन्म लेते हैं और बहुत से अल्पायु में ही मर जाते हैं और बहुत-से पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। यदि जीवात्मा के कर्मानुसार ईश्वर न्याय करने वाला न हो तो जीवात्मा इन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को कैसे प्राप्त होते हैं ; संसार में एक भी जीवात्मा ऐसा नहीं है जो अपनी मर्जी से अस्वस्थ शरीर, और निर्धन परिवार में जन्म लेने को तैयार हो और अल्पायु में ही शरीर छोड़ने को तैयार हो। अपनी इच्छा से कोई जीवात्मा कष्ट सहना पसन्द नहीं करता है ; तो फिर इसे कष्ट देने वाला कौन है ?

विद्यार्थी—सुख-दुःख मानव के कर्मों का परिणाम है इसमें ईश्वर कहाँ आता है ?

महात्मा—स्वस्थ-अस्वस्थ शरीरों के साथ निर्धन व धनी परिवारों में जन्म पाना जीवात्मा के कर्मों का फल उसे कैसे प्राप्त होता है ? यदि पूर्व कर्मों का फल है तो उन कर्मों का फल इस जन्म में देने वाला कौन है ? पिछले कर्मों का फल इस जन्म में कैसे स्वतः फल देने वाला बन गया ? आप कहीं जा रहे हैं और मार्ग में आप को सोना पड़ा मिल गया तो यह सोना आप के कौन से वर्तमान कर्म का फल है ? यह बात सत्य है कि मानव को अपने कर्मों का ही फल मिलता है ; परन्तु जब तक उन कर्मों का फल देने वाली कोई शक्ति न हो तो स्वतः फल की प्राप्ति होना कठिन है।

विद्यार्थी—कर्मों के सिद्धान्त ही कर्मों के फल देने वाले होते हैं ईश्वर नहीं।

महात्मा—वर्तमान कुछ कर्मों के बारे में आप अपनी बात को सिद्ध कर सकते हैं सर्वत्र नहीं। इसके अतिरिक्त ईश्वर भी जीवात्मा को फल नियमानुसार ही देता है। संसार के समस्त नियम उसी के हाथ हैं। परन्तु मार्ग में

पड़ी धन की थैली के प्राप्त होने में वर्तमान कर्मों के नियम नहीं ईश्वर का न्याय ही सिद्ध होता है।

विद्यार्थी—न्याय का तभी लाभ होता है जब अपराधी को यह पता हो कि अमुक अपराध का उसे दण्ड दिया दिया गया है ; परन्तु ईश्वर के न्याय में न तो न्याय करने वाला दिखलाई देता है और न वह दोष ही कि जिसका दण्ड दिया गया है तो ऐसी अवस्था में उस दन्ड का क्या लाभ ?

महात्मा—मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि दी है। बुद्धि के बल पर ही वह किसी ईश्वरीय दण्ड के पीछे अपने पाप और दण्ड देने वाले की कल्पना कर सकता है। यदि मानव अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं करता है तो इसमें ईश्वर का क्या दोष ?

विद्यार्थी—मनुष्य किसी ईश्वरीय दण्ड के लिए कैसे अपने दोष की कल्पना कर सकता है ?

महात्मा—जिस प्रकार एक डाक्टर अपने या दूसरे मरीज़ के किसी रोग को देखकर उस रोग के कारणों का तुरन्त अनुमान लगा लेता है वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति ईश्वरीय दण्ड के कारणों का अनुमान लगा सकता है।

विद्यार्थी—ईश्वर ने बुद्धि के साथ सबको ही ईश्वरीय दण्डों के कारणों को समझने की क्षमता क्यों नहीं दी ?

महात्मा—ईश्वर ने बुद्धि के साथ साथ अपना ज्ञान भी सब को समान रूप से समझाने को प्रदान किया है। इनका प्रयोग करना या न करना मनुष्य के अपने हाथ में है।

विद्यार्थी—ईश्वर हमारा पिता है, दयालु है और हमारा कल्याण चाहता है। वह अन्तरयामी व त्रिकालदर्शी भी है। हम जब पाप करते हैं तो वह हमें पाप करने से ही क्यों नहीं रोक देता है ? क्या उसे हमसे पाप करा कर हमें दण्ड देने में आनन्द आता है ? फिर वह हमारा कल्याण चाहने वाला पिता कैसे हुआ ?

महात्मा—अध्यापक विद्यार्थी का पिता के समान ही शुभचिन्तक होता है, परन्तु परीक्षा के समय अध्यापक यह जानता है कि अमुक विद्यार्थी प्रश्न का उत्तर गलत दे रहा है, परन्तु वह फ़िर भी उसे उसकी त्रुटि नहीं बतलाता है क्यों ? यदि उसका उत्तर मास्टर से ही पूछा जाय तो वह यही उत्तर देगा कि वह वर्ष भर उसे बतलाता रहा है; और आज उसकी परीक्षा

का समय है। अतः आज उसे बतलाना उसके हित में नहीं होगा। इसी प्रकार ईश्वर ने हमें बुद्धि और अपना सत्य ज्ञान दे दिया है। अतः अब हमें बतलाना अहितकर ही होगा।

विद्यार्थी—पाप से रोकना अहितकर कैसे होगा ?

महात्मा—पाप से रोकने का अर्थ है मानव से उसके कर्म करने की स्वतंत्रता छीनकर उसे जेल-खाने का कैदी बना देना। कर्म करने की अपनी स्वतंत्रता को संसार का कोई भी समझदार व्यक्ति छिनवाने के लिये कदापि तैयार नहीं होगा।

विद्यार्थी—ईश्वर मानव को कर्म करने से न रोके या उसके कर्म करने की स्वतन्त्रता को न छीने यह बात तो समझ में आती है; परन्तु वह अच्छाई या बुराई की ओर संकेत तो कर सकता है ताकि मानव को बुराई से हटकर अच्छाई की ओर जाने में सहायता मिल जाय।

महात्मा—ईश्वर सदैव मानव को पापों से बचाने और अच्छाई की ओर जाने का संकेत करता है; परन्तु संसार में बहुत कम लोग उसके संकेत को स्वीकार करते हैं और अधिकांश जान-बूझकर उसके संकेत के विरुद्ध आचरण करते हैं। ईश्वर प्रत्येक मानव की आत्मा में व्यापक है। पाप-कर्म करते समय वह संकेत के रूप में भय, लज्जा व शंका उत्पन्न करता है और उसे उधर न जाने को समझा देता है; और अच्छे कर्म करते समय वह उसे हर्ष, उत्साह, प्रसन्नता देकर उसे प्रोत्साहन देता है। अन्तरात्मा की यह आवाज ही वास्तव में ईश्वर की आवाज़ है। उसे सुनना न सुनना मानव के अपने हाथ में है। ईश्वर अपनी आवाज़ को जीवात्मा पर थोपता नहीं है; क्योंकि इससे जीवात्मा दासता के चंगुल में फँस जाता है। और आपस की स्वतंत्रता का अपहरण होता है।

विद्यार्थी—संसार में हम देखते हैं कि अधिकांश भले व्यक्ति दुःखी हैं और दुष्ट व्यक्ति सुखी हैं। इससे ईश्वर का न्याय अधूरा सिद्ध होता है।

महात्मा—ईश्वर का न्याय दोषपूर्ण नहीं अपितु हमारे समझने का दोष है। पहली बात तो यह कि भलापन ऐसी योग्यता नहीं है कि उससे मानव को सर्वत्र सरलता व सुख प्राप्त हो जाय। सुख या दुःख मानव के अच्छे या बुरे होने का परिणाम न होकर उसके कर्म का फल होते हैं। एक भला ईमानदार किसान अपने खेत में परिश्रम नहीं करता और एक दुष्ट दुराचारी किसान

अपने खेत में खूब परिश्रम करता है तो निश्चित रूप से अपने कर्मानुसार दुष्ट दुराचारी किसान की ही फसल अच्छी होगी। खेती का अच्छा-बुरा होना किसानों की अच्छी या बुरी मनोवृत्ति पर आधारित न होकर उसके परिश्रम पर ही आधारित होता है। मानव जिस क्षेत्र में ईमानदारी से पुरुषार्थ व परिश्रम करेगा अर्थात् कर्तव्य पालन के सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुकूल आचरण करेगा तो उसे अनुकूल फल अवश्य प्राप्त होगा।

संसार में ऐसी भी घटनायें होती हैं जहाँ परिश्रम व पुरुषार्थ करने पर भी फल नहीं प्राप्त होता और कहीं इसके विपरीत फल मिल जाता है। यह मानव के पिछले कर्मों के फल के परिणाम स्वरूप है। या दोनों का आगे अपने कर्मों का फल मिलने वाला होता है। जिस प्रकार सिनेमा हाल में किसी फिल्म के मध्य भाग को देखकर फिल्म की किसी विशेष घटना के बारे में मानव यह समझने में असमर्थ होता है कि उस घटना का पूर्व कारण क्या है, या आगे इसका परिणाम क्या होगा ? इसी प्रकार मानव जीवन की फिल्म बड़ी लम्बी है। यह जन्म-जन्मान्तरों से चलती चली आ रही है। और मरने के पश्चात् भी चलती रही है। सो मानव जीवन की किसी विशेष अवस्था पर बिना उसका आगा-पीछा देखे हम कैसे निर्णय दे सकते हैं।

विद्यार्थी—आपकी दृष्टि में संसार के समस्त मजदूरों के पिछले कर्म खराब और समस्त पूंजीपतियों के अच्छे कर्म हैं ?

महात्मा—पिछले कर्मों को छोड़ वर्तमान समय भी एक पूँजीपति अपनी पूँजी से अधिक से अधिक लाभ उठाने को पूरा परिश्रम व पुरुषार्थ करता है, और एक मजदूर पागल की भाँति कार्य करता है, परन्तु अपने परिश्रम का पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं करता। वह भिखारियों की भाँति जो कुछ मिल-मालिक उसपर दया करके उसे दे देता है उसी से वह सन्तुष्ट हो जाता है। बस यही दोनों के कर्मों में महान् अन्तर है और यही अन्तर दोनों की अच्छी बुरी अवस्था का कारण है। जहाँ जिस देश में मजदूरों ने अपने परिश्रम के महत्व को समझ उसका अधिक से अधिक फल प्राप्त करने की कला को जान लिया है वहाँ के मजदूर बहुत ही अच्छी हालत में हैं और आज वही मिलों के मालिक बन गये हैं।

इसके अतिरिक्त यह बात भी सत्य है कि सर्वत्र मजदूर शारीरिक परिश्रम करते हैं तो ईश्वर उन्हें स्वास्थ्य और धन दोनों देता है; परन्तु मिल-मालिकों

को शारीरिक परिश्रम न करने के कारण केवल धन देता है। इस प्रकार मजदूर जहाँ भूख, नींद, चलने-दौड़ने, हसने आदि का आनन्द लेता है वहाँ मिल-मालिक सोने-चाँदी के मध्य कैदी की भाँति भूख, नींद, प्यास, हंसी के लिये तरसता रहता है। उसका जीवन देखने में भले सुखी दिखलाई देता है; परन्तु वास्तव में साक्षात् नरक होता है।

अन्तिम उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी में पुनः प्रश्न करने का साहस न रहा; और समय भी समाप्त हो गया था। अतः शान्ति-पाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

१९

स्तुति-प्रार्थना-उपासना

गत सप्ताह महात्मा जी के धार्मिक प्रवचनों ने स्कूल के विद्यार्थियों में एक विचित्र उत्साह व रुचि उत्पन्न कर दी थी। सप्ताह भर उनके प्रवचनों की चर्चा चलती रही और विद्यार्थी आगामी सप्ताह महात्मा जी से अपनी शंकाओं का समाधान करने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। सब ने मिलकर निश्चय किया कि इस बार महात्मा जी से ऐसे प्रश्न किये जाएँ कि उनका मुख ही बन्द हो जाय। आखिर, वह दिन आ गया ; और समस्त विद्यार्थी घण्टी बजते ही दौड़कर प्रार्थना-भवन में जा बैठे। जब हैडमास्टर महोदय महात्मा जी को लेकर प्रार्थना-भवन में पहुँचे तो छात्रों ने सहर्ष उनका स्वागत किया।

महात्मा जी ने मंच पर पधारते ही ईश्वरोपासना के कुछ वेद-मन्त्रों का उच्चारण किया और मुस्कराते हुए बच्चों को कहा—"बच्चो ! हमने निश्चय किया है कि हम वार्तालाप के रूप में ही प्रवचन देंगे। अतः आप धर्म सम्बन्धी प्रश्नों को उपस्थित करते जाएँ और हम अपनी योग्यतानुसार उनका समाधान करने का प्रयत्न करेंगे।" प्रश्न करने की आज्ञा पाते ही एक विद्यार्थी ने खड़े

होकर निम्न प्रश्न किया।

विद्यार्थी—आपने गत सप्ताह अपने प्रवचन में बतलाया था कि मानव व मानव समाज को सुख, शान्ति व आनन्द पहुँचाने वाले गुण व कर्म ही धर्म हैं; और धर्म आचरण का नाम है केवल पूजा-पाठ का नहीं। फिर यदि एक व्यक्ति अच्छे गुणों को धारण कर धार्मिक जीवन ही व्यतीत करने का प्रयत्न करे और पूजा-पाठ न करे तो क्या हानि है?

महात्मा—मैंने गत सप्ताह बतलाया था कि मन्दिर, मस्जिद, गिरजा व गुरुद्वारे धार्मिक स्कूल के भवन सदृश हैं और पूजा-पाठ धर्म-पालन करने की शिक्षा के समान है। जिस प्रकार स्कूल की शिक्षा प्राप्त किये विना एक विद्यार्थी डॉक्टर या इंजीनियर नहीं बन सकता है वैसे ही धार्मिक शिक्षण प्राप्त किये बिना धार्मिक बनना कठिन है।

विद्यार्थी—मन्दिर, मस्जिद व गिरजा में लोग धर्म की शिक्षा प्राप्त करने कहाँ, जाते हैं वहाँ तो लोग भगवान से अपने पापों की मुक्ति कराने जाते हैं? सो आप का कहना कहाँ तक सत्य है?

महात्मा—पूजा का वह सच्चा स्वरूप नहीं है। वह तो पूजा का ढोंग है। उससे सचमुच ही धर्म की शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती है। इसी कारण हम लोगों का धर्म पूजा तक ही सीमित रहता है और हमारे आचारण में नहीं आता है। धर्म का ढोंग करने वाले लोगों के अधार्मिक आचरण को देखकर लोगों को धर्म से घृणा उत्पन्न हो गई है और लोग नास्तिक व अधार्मिक बनते जा रहे हैं। यह पूजा नहीं अपितु ईश्वर के साथ सौदेबाजी है। हम ईश्वर की पूजा के बदले अपने पापों की मुक्ति माँग कर ईश्वर से अपनी पूजा की कीमत चाहते हैं। परन्तु ईश्वर सच्चिदानन्द एवं प्रत्येक प्रकार से पूर्ण है, उसे किसी बात की आवश्यकता नही है, न ही वह अपनी प्रशंसा का भूखा है। वह हमारे साथ इस प्रकार की सौदेबाजी क्यों करेगा?

विद्यार्थी—आपके विचार में पूजा का सही स्वरूप क्या है?

महात्मा—पूजा क्या है और इसका लक्ष्य क्या है? इसे धर्म के एक बड़े विद्वान श्री गंगा प्रसाद जी उपाध्याय के शब्दों में ही बतलाते हैं। उन्होंने कहा है—

पूजा धर्म का व जीवन का अन्त नहीं है। हमारी गुप्त शक्तियों के विकास का यह एकमात्र साधन है और अपने जीवन को समुन्नत करने की

सीढ़ी है। हम ईश्वर की उसके लिए पूजा नहीं करते पर अपने लाभ के लिए करते हैं। यह समझना हम सब की भूल है कि हमारी पूजा से ईश्वर की महानता बढ़ जाती है। ऐसी बात कहना सर्वथा असंगत है। प्रभु स्वयं ज्योतिमय हैं। उन्हें किसी बाहर की ज्योति की आवश्यकता नहीं है और न ही हमारी प्रार्थनाएँ उसकी महानता को बढ़ा सकती हैं। हम अपने को अधिक अच्छा बनाने के लिए ईश्वर की पूजा व स्तुति करते हैं।

विद्यार्थी – महात्मा जी, क्षमा कीजियेगा, इस परिभाषा से हमारी समझ में पूजा का सही स्वरूप समझ में नहीं आया उदाहरण देकर समझाइयेगा।

महात्मा—समुद्र के किनारे दो व्यक्ति समान रूप से बैठे हैं। एक व्यक्ति मछली पकड़ने के लिए अपना काँटा समुद्र में फेंक कर उसे ध्यान से देख रहा है; और यही सोच रहा है कि कब मछली काँटे में फँसे और वह उसे पकड़े; दूसरा व्यक्ति उसी के समीप समुद्र की सुन्दर लहरों में परमात्मा की ज्योति देख रहा है और वहाँ के सुन्दर दृश्य और सुन्दर वायु का आनन्द लेकर अपने ज्ञान और स्वास्थ्य दोनों का लाभ प्राप्त कर रहा है। यदि पहले व्यक्ति के हाथ मछली आ गई तो वह समुद्र पर अपने जाने को सफल समझता है अन्यथा वह अपना वहाँ जाना व्यर्थ समझ निराशा व बेचैनी लेकर ही घर लौटेगा, जब कि दूसरा व्यक्ति समुद्र पर जाने मात्र में ही अपना लाभ व कल्याण अनुभव करेगा अर्थात् समुद्र पर जाना मात्र ही उसके कल्याण का कारण व साधन होता है। ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी कुछ कामना लेकर मन्दिर मस्जिद में पूजा करने जाते हैं तो उनकी अवस्था पहले व्यक्ति के समान होती है; और दूसरे व्यक्ति वह जो पूजा करने को ही अपने कल्याण का कारण व साधन समझते हैं उन्हें पूजा के द्वारा अवश्य लाभ पहुँचता है।

विद्यार्थी—पूजा के द्वारा लाभ किस प्रकार पहुँचता है?

महात्मा—जिस प्रकार एक विद्यार्थी को अध्यापक के पास पहुँचकर या किसी विद्वान् महात्मा के पास सत्संग करके व्यक्ति को ज्ञान का लाभ पहुँचता है और अपने जीवन को शुद्ध पवित्र बनाते हुए ऊँचा उठने की प्रेरणा मिलती है उसी प्रकार परमात्मा के चरणों में पूजा करने से लाभ पहुँचता है।

विद्यार्थी—पूजा करने के कितने प्रकार होते हैं?

महात्मा—पूजा करने के तीन मार्ग होते हैं अर्थात् स्तुति, प्रार्थना और उपासना।

विद्यार्थी—कृपया स्तुति के स्वरूप को विस्तार से बतलाने की कृपा करें।

महात्मा—स्तुति गुण-गान को कहते हैं। इसके द्वारा भक्त परमात्मा के गुणों का ध्यान करता है और उसके द्वारा बनाई सृष्टि के द्वारा उसके सही स्वरूप व कार्यों का ध्यान करता है। मानव का यह स्वभाव है कि वह जिस प्रकार के गुणों का बार-बार ध्यान करता है तो वह गुण धीरे-धीरे उसके अन्दर आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

इस प्रकार ईश्वर के गुणों का ध्यान लगातार करने से मानव ईश्वर के गुणों को धारण करता है। ईश्वर की सृष्टि में उसके कार्यों को देखकर वह अपने जीवन में अपने व्रतों व कर्मों को करने की योजना व क्षमता प्राप्त करता है।

विद्यार्थी—वैज्ञानिक लोग ईश्वर की सृष्टि के नियमों की खोज करते हैं तो क्या वह भी इस प्रकार ईश्वर की स्तुति करते हैं?

महात्मा—वैज्ञानिक लोग केवल भौतिक जगत् के नियमों की खोज करने तक ही सीमित रहते हैं, वह इससे आगे नहीं बढ़ पाते अर्थात् वह इस बात की न खोज करते हैं और न विचारते हैं कि इन नियमों को किसने बनाया है? क्यों बनाया है? कौन इन नियमों का नियन्त्रण करता है? स्तुति में इन प्रश्नों पर विशेष रूप से विचार किया जाता है।

विद्यार्थी—प्रार्थना किसे कहते हैं?

महात्मा—जब स्तुति के द्वारा मानव ज्ञान और अपने कर्तव्य की प्रेरणा प्राप्त कर लेता है तब स्वाभाविक रूप से उस ज्ञान व प्रेरणा को कर्म में परिणित करने की तीव्र अभिलाषा भक्त के मन में उत्पन्न होती है। बस उस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये भक्त परमात्मा से शक्ति, सामर्थ्य, साहस, साधन व सुअवसर की प्रार्थना करता है। प्रार्थना लगातार करने का यह प्रभाव पड़ता है कि मानव आत्मचिन्तन व आत्मनिरीक्षण व आत्मशुद्धि के द्वारा ऊपर लिखित गुणों को धारण करता चला जाता है; और साथ ही अपने लक्ष्य का नित्य ध्यान करने से वह लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं होता अपितु अपने लक्ष्य की ओर नित्य बढ़ता चला जाता है। इस प्रकार अपनी लक्ष्यसिद्धि में प्रार्थना एक जादू का कार्य करती है।

विद्यार्थी—उपासना का स्वरूप क्या है?

महात्मा—उपासना समीप बैठने को कहते हैं अर्थात् ईश्वर के समीप बैठने का नाम उपासना है। मानव जब स्तुति के द्वारा ज्ञान व प्रेरणा प्राप्त

कर अपने व्रतों को धारण करता है। और अपने व्रतों को पूर्ण करने के लिये कर्म क्षेत्र में अपनी सफलता के लिये नित्य प्रार्थना करता है तो निश्चित रूप से उसे सफलता प्राप्त होती है और धन-सम्पन्नता व यश भी उसे मिलता है। जीवन में सफलता के साथ असफलता का भी उसे मुँह देखना पड़ता है। ऐसी अवस्था में सफलता, धन-दौलत व यश उसके अन्दर अभिमान को जागृत कर उसका पतन न कर दें, और असफलता के समय वह घबड़ा कर अपने लक्ष्य को छोड़ न बैठे, इन दोनों ही खतरों से बचने के लिये मानव को ईश्वर के समीप नित्य बैठना आवश्यक है।

अपने से बड़े के समीप बैठने से अभिमान भाग जाता है और अपने से दुःखी के समीप बैठने से अपना दुःख कम हो जाता है, यह मनोविज्ञान का नियम है। अतः यदि हम अपने को अभिमान से बचाना चाहते हैं तो हमें उस प्रभु के समीप नित्य बैठना चाहिये।

अपने को पवित्र बनाने के लिये भी मानव को परमात्मा के समीप बैठना चाहिये। जिस प्रकार अग्नि के समीप बैठने से वस्तु अपनी समस्त मलिनता व दोषों से मुक्त होकर पवित्र हो जाती है; उसी प्रकार उस महान् ज्योति के समीप बैठने से मानव की समस्त बुराइयाँ दूर हो जाती हैं।

ईश्वर के समीप बैठने से मानव ईश्वरीय गुणों को धारण करता है। जिस प्रकार चुम्बक पत्थर के समीप आने से साधारण लोहा भी चुम्बक पत्थर बन जाता है, उसी प्रकार शक्तियों के भण्डार परमात्मा के समीप बैठने से भक्त भी शक्ति का भण्डार बन जाता है। उपासना-गुण का इस प्रकार वर्णन किया है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽवहम्।ओ ऽम् खंब्रह्म।

(यजु० ४०।१७)

अटल ईश्वरीय नियमों पर चमकता हुआ पर्दा पड़ा है। इस पर्दे को हटाना होगा। जो शक्ति इस आदित्य में है, वह मुझमें भी है। वह प्रभु व्यापक और महान् हैं। उसका नाम ही ओ३म् है।

विपत्तियों व असफलताओं के समय भी ईश्वर के समीप बैठना अत्यावश्यक है। जैसे एक बच्चा दूसरे बच्चों से तंग आकर या चोट खाकर रोता हुआ अपनी माँ के पास पहुँचता है तो माँ तुरन्त उसे उठाकर अपनी गोद में

बैठा लेती है और उसके सिर पर प्यार का हाथ फेरते हुए उसके अपमान करने या मारने वाले बच्चे से बदला लेने का आश्वासन देती है या उसकी सहायता करने का आश्वासन देती है तो बच्चा अपने कष्ट व अपमान को भूल कर प्रसन्न हो जाता है और फिर साहस के साथ खेलने लग जाता है,ठीक उसी प्रकार संसार की विपत्तियों, असफलताओं, अपमानों से दुखी होकर जब मानव माताओं की माता उस विश्व-माता की गोद में बैठकर अपना प्यार, दुलार व आश्वासन देती है; तो मानव फिर आशा, शक्ति व साहस का पुंज बनकर पुनः कर्म क्षेत्र में डट जाता है।

इस प्रकार स्तुति, प्रार्थना, और उपासना द्वारा मानव अपना कल्याण करता है। इतना कहकर महात्मा जी ने अपना प्रवचन समाप्त किया! शान्ति पाठ के पश्चात् सभा समाप्त हुई।

२०

मैं कौन हूँ ?

स्कूल का प्रांगण छात्रों और जनता से भरा है। लाउडस्पीकर की व्यवस्था की गई है ताकि दूर बैठे नागरिक भी प्रवचन का आनन्द ले सकें। महात्मा जी विद्यार्थियों के ही नहीं अपितु समूचे नगर की श्रद्धा के पात्र बन चुके हैं। उनके त्याग, तप, योग्यता तथा प्रवचन शैली की सर्वत्र चर्चा है। सबसे बड़ी विशेषता उनमें यह है कि समय पालन में वह इतने सख्त हैं कि बहुधा विदेशी भी उनकी प्रशंसा करते हैं। सरकारी नोकरी के समय जिस किसी कालेज के प्रिन्सिपल बनने के अवसर उन्हें मिले वहाँ के लोग आज तक उनके द्वारा स्थापित अनुशासन की प्रशंसा करते हैं। अनुशासन पालन में जितने ही वह कठोर उतने ही वह अपनी वाणी व व्यवहार में मधुर हैं। इसी कारण उनके प्रति लोगों में प्रेम व श्रद्धा का कभी अभाव नहीं हुआ। संन्यास लेने के पश्चात् तो उनका व्यक्तित्व आकाश को चूमने लगा है।

ठीक समय पर वेद-मन्त्रों के पाठ के पश्चात् महात्मा जी ने अपनी वाणी को इस प्रकार प्रसारित किया—बच्चो ! आज हमें किधर चलना है ? बस एक विद्यार्थी ने तुरन्त खड़े होकर कहा—महाराज ! आज हमें इस प्रश्न का उत्तर दीजिये कि "मैं" कौन हूँ ?

महात्मा—बच्चो ! यही वह प्रश्न है जिसका उत्तर पाने के लिए बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों ने पहाड़ों की गुफाओं में अपने समस्त जीवन की आहुति दे दी, महान् वैज्ञानिकों ने अपनी परीक्षणशालाओं में अपने खाने-पीने-सोने तक को भुला दिया। फिर भी आज तक इस प्रश्न का उत्तर विवादास्पद बना है। विज्ञान की उन्नति ने इसे अब और भी जटिल बना दिया है। परन्तु प्रतीत यही हो रहा है कि आज से हजारों-लाखों वर्ष पूर्व भारत के ऋषि-मुनि जिस परिणाम पर पहुँचे थे उसी पर वैज्ञानिकों को एक दिन आना ही पड़ेगा। वैज्ञानिकों का प्रयत्न सराहनीय है ; और उन्होंने अपना ध्येय भी बनाया है कि वह अन्य भौतिक समस्याओं की भाँति जीवात्मा तथा जीवन-मरण की गुत्थी का वैज्ञानिक आधार पर हल अवश्य उपस्थित कर सकेंगे, परन्तु अभी तो दिल्ली उनसे कोसों दूर है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! क्षमा कीजियेगा, बड़े आश्चर्य की बात है कि मैं कौन हूँ ? इस प्रश्न का हमारे वर्तमान जीवन से भला क्या सम्बन्ध है ? इसके जानने की आवश्यकता ही क्या है ? इसका उत्तर जानने के लिये ऋषि-मुनियों ने अपने जीवन की व्यर्थ में क्यों आहुति दी ? असली प्रश्न तो यह है कि इस जीवन को हम सुखी कैसे बनाएँ ?

महात्मा—बच्चे ! मैने इस प्रश्न का उत्तर अपने पिछले प्रवचनों में कई बार दिया है ; परन्तु फिर भी आपने इस प्रश्न को आज उठा दिया। इसमें आपका दोष नहीं है। इस भौतिकवादी व भोगवादी युग में भोग के अतिरिक्त अन्य विषयों पर चर्चा करना व्यर्थ ही प्रतीत होता है ; परन्तु इन बेचारों को पता नहीं कि भौतिकवाद व भोगवाद इस प्रश्न के हल किये बिना मौत अथवा एक ऐसा जाल का रूप बन जाते हैं कि जिसमें सुख के स्थान पर कष्ट ही कष्ट है ; और फिर इस जाल में से निकलना सर्वथा असम्भव बन जाता है।

अपने स्वरूप को जानने के पश्चात् ही व्यक्ति को संसार में यह ज्ञान हो पाता है कि उसका मार्ग क्या है ? उसके मार्ग के साधन क्या हैं ? मार्ग की

यात्रा में उसके मित्र व शत्रु कौन हैं ? यह जान लेने से उसकी यात्रा बड़ी सरल हो जाती है ; और जीवन सुखी बन जाता है, अन्यथा इस प्रश्न का उत्तर पाये बिना आगे बढ़ने के बदले समूचा संसार एक जंगल समान बन जाता है ; और एक अंधे के समान व्यक्ति इधर-उधर भटकता फिरता है। उसका जीवन फिर एक लक्ष्यहीन आवारा की भाँति हो जाता है। उसकी इन्द्रियाँ फिर बेलगाम बनकर ऐसे मानव को अपनी माँगों के दल-दल में ऐसा धँसा देती हैं कि फिर उस दलदल से उसकी मुक्ति मृत्यु के रूप में ही सम्भव हो पाती है। अतः वर्तमान जीवन को सुखी बनाने के लिये इस प्रश्न का समझना परमावश्यक है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! भौतिकवादी लोगों की यह मान्यता है कि 'जीवात्मा' मैटर का कैमीकल एक्शन है। यह यहीं पैदा होकर यहीं समाप्त हो जाता है। क्या आप इस मत से सहमत हैं ?

महात्मा—इस मत से मैं सहमत नहीं हूं, और न ही कोई समझदार व्यक्ति इससे सहमत हो सकता है। मैटर बेजान पदार्थ है ; और जीवात्मा चेतन वस्तु है। अभाव से भाव की उत्पत्ति होना असम्भव है, यह विज्ञान स्वयं स्वीकार करता है। फिर बेजान मैटर (प्रकृति) से चेतन जीवात्मा का प्रादुर्भाव कैसे सम्भव हो सकता है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! जिस प्रकार ग्रामोफोन के रिकार्ड या टेप-रिकार्ड में विभिन्न प्रकार के गाने भर दिये जाते हैं, और वह रिकार्ड जड़ होते हुए भी उन्हें ग्रहण कर उन्हें फिर उपस्थित करते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार व्यक्ति के मस्तिष्क में बाह्य जीवन के अनुभवों के रिकार्ड एकत्रित होते रहते और आवश्यकतानुसार बजते रहते हैं, पर हम भ्रान्तिवश इन्हें चेतनता का नाम दे देते हैं, वस्तुतः यह सब खेल जड़ प्रकृति का ही है।

महात्मा—रिकार्ड में गानों को भरा जा सकता है और उन्हें पुनः रिकार्ड द्वारा उपस्थित भी किया जा सकता है, पर कोई रिकार्ड ऐसा गाना भी उपस्थित कर सकता है जो उसमें भरा न गया हो ?

विद्यार्थी—ऐसा तो सम्भव नहीं है।

महात्मा—बच्चो ! यदि मानव का आत्मा ग्रामोफोन के रिकार्ड की भाँति जड़ होता तो फिर वह वही बातें जानता होता जो देख चुका है या

सुन सका है ; परन्तु जीवात्मा तो बड़े दूर तक की कल्पनाएँ करता है नित्य नये आविष्कार करता है। क्या यह किसी जड़ पदार्थ के लिये सम्भव है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! कम्प्यूटर यह भी कर देता है। आप उसमें सभी जानकारी भर दीजिये। फिर वह उसके आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं को भी बतला देता है।

महात्मा—बच्चे ! कम्प्यूटर उतना ही कर पाता है जो उसमें भर दिया जाता है। वह केवल उसके जोड़ घटा आदि लगाकर परिणाम घोषित कर देता है। उसमें बुद्धिपूर्वक सोचकर कोई परिणाम निकालने की क्षमता नहीं है। मैं किसी के साथ दया, क्षमा, प्रेम, सेवा आदि करूँ या नहीं ? चोरी या पाप करूँ या नहीं ? इन्द्रियों का संयम करूँ या इन्हें बेलगाम छोड़ दूँ, इत्यादि प्रश्नों का उत्तर कम्प्यूटर कदापि नहीं दे सकता। इनका उत्तर मात्र तथ्यों पर आधारित नहीं होता अपितु आत्मा की आन्तरिक आवाज़ पर निर्भर करता है।

इसके अतिरिक्त जीवात्मा का एक विशेष गुण यह भी है कि यह सुख-दुःख अनुभव करता है, और प्रयत्नशील है। जड़ पदार्थ चाहे रिकार्डर हो या कम्प्यूटर उसमें सुख-दुःख के अनुभव करने [और प्रयत्नशील होने के गुणों का सर्वथा अभाव होता है।

विद्यार्थी—पेड़-पौधे जड़ होते हुए भी इन दोनों गुणों से युक्त हैं।

महात्मा—-पेड़-पौधों में एक सीमित मात्रा में ही प्रयत्नशीलता है ? पर वे सुख-दुःख भी अनुभव करते हैं यह अभी पूर्णतः सिद्ध नहीं हो पाया है। फिर भी, यदि इन दोनों गुणों की वृक्षों में सिद्धि हो जाए तो फिर निश्चित रूप से इनमें यह गुण जीवात्मा की उपस्थिति के कारण ही सम्भव हो सकते हैं अन्यथा नहीं। जिस प्रकार मानव शरीर जीवात्मा की उपस्थिति के कारण ही उक्त दोनों गुणों को धारण करता है ; उसके बिना जड़ हो जाता है, उसी प्रकार वृक्षों की स्थिति होती है।

जिन वैज्ञानिकों का विश्वास है कि आत्मा मैटर का कैमिकल एक्शन है वे इधर-उधर क्यों भटकते फिर रहे हैं, उन्हें अपने परीक्षण से अपनी मान्यता को सत्य सिद्ध करना चाहिये। इधर-उधर के उदाहरण देने से क्या लाभ ?

विद्यार्थी—रूस आदि देशों के वैज्ञानिकों ने माता के बिना बनावटी गर्भ में बच्चों को उत्पन्न करने में बहुत सीमा तक सफलता प्राप्त कर ली है।

महात्मा—भोले बच्चो! उन्होंने मनुष्य के वीर्य—कीटाणुओं को लेकर ही कृत्रिम गर्भ में उसे पालने या बढ़ाने के प्रयत्न किये हैं। इससे आत्मा की उत्पत्ति कहाँ सिद्ध हो सकती है?

विद्यार्थी—आपकी दृष्टि में आत्मा क्या है; और इसकी उत्पत्ति कैसे हुई?

महात्मा—आत्मा एक अमर सत्ता है। यह अनादि है। इसे किसी ने उत्पन्न नहीं किया।

विद्यार्थी—कुछ लोगों का विश्वास है कि सृष्टि के आदि में ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नहीं था; और सृष्टि को बनाते समय ईश्वर ने स्वयं ही जीवात्मा और जगत् का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार जीवात्मा ईश्वर का ही एक अंश मात्र है।

महात्मा—किसी वस्तु के अंश में वे ही गुण होते हैं जो उसमें होते हैं। यदि जीवात्मा ईश्वर का ही अंश है, तो इसमें भी ईश्वर के सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, सर्वान्तिर्यामी आदि गुण होने चाहियें; परन्तु इसके विपरीत जीवात्मा अल्पज्ञ व एकद्देशीय है, ईश्वर सच्चिदानन्द है; परन्तु जीव सुख-दुःख अनुभव करता है। अतः जीवात्मा ईश्वर का अंश कदापि नहीं हो सकता।

विद्यार्थी—जीवात्मा है तो ईश्वर का ही अंश; परन्तु जड़-प्रकृति के सम्पर्क में आकर भ्रान्ति व अज्ञान के वशीभूत होकर अपने स्वरूप को भूलकर अल्पज्ञ, एकद्देशीय व सुख-दुःख अनुभव करने वाला बन गया है।

महात्मा—ऐसा कहकर आप ईश्वर का अपमान कर रहे हैं। क्या संसार की कोई शक्ति कभी ईश्वर को अज्ञानी व अल्पज्ञ बना सकती है? इसके अतिरिक्त जब जड़-प्रकृति भी ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है तो क्या ईश्वर को ईश्वर अज्ञानी व अल्पज्ञ बना रहा है? क्या ईश्वर को भी कभी किसी भी अवस्था में भ्रान्ति होना सम्भव है?

विद्यार्थी—कुछ लोगों का कहना है कि सृष्टि के आदि में ईश्वर ने जीवात्मा को अपने सामर्थ्य से पैदा किया; और वह अमर है। इसमें आपका

क्या मत है ?

महात्मा—यह विज्ञान का नियम है कि जो वस्तु उत्पन्न होती है उसका अन्त अवश्य होता है। इसलिये यदि ईश्वर ने जीवात्मा को उत्पन्न किया है तो फिर यह अमर कैसे हो सकता है ? अमरता एक दिशा में नहीं अपितु दोनों छोर पर अमरता होने पर ही अमरता हो सकती है। यह कदापि नहीं हो सकता कि अमुक वस्तु पहले नहीं थी ; परन्तु अब पैदा होकर अमर हो गई है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! यह बात सत्य सिद्ध है कि माता के गर्भ में पिता का वीर्य कण अथवा कीटाणु ही वृद्धि पाकर बच्चा बन जाता है। वीर्य जड़ पदार्थ है। इसलिये यह जीवात्मा भी जड़ से ही उत्पन्न हुआ है।

महात्मा—अभी आपने कहा है कि माता-पिता के कीटाणु ही वृद्धि को पाकर बच्चा बन जाते हैं। सो कीटाणु जीवात्मा के अतिरिक्त क्या है ?

विद्यार्थी—यदि जीवात्मा स्वतन्त्र सत्ता है तो फिर बच्चे में माता-पिता के गुण-स्वभाव कैसे आ जाते हैं ?

महात्मा—जीवात्मा प्रथम पिता के शरीर में आता है ; और बाद में माँ के गर्भ में रहता है। इस प्रकार दोनों के सम्पर्क में आकर उनके गुण-स्वभाव धारण कर लेता है। इसके अतिरिक्त उसका शरीर दोनों शरीरों का मिश्रण या देन होता है। इसलिये उनके शरीरों के दोष-गुण उसको प्राप्त होना स्वाभाविक ही है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! यदि यह माना जाय कि जीवात्मा माता-पिता का शरीरांश है इसलिये उसमें वे गुण विद्यमान हैं तो इसके खण्डन में आपके पास क्या युक्तियाँ हैं ?

महात्मा—जीवात्मा माता-पिता का शरीरांश अर्थात् जड़ पदार्थ होता तो फिर वह माता-पिता के गुण-स्वभाव को कैसे धारण करता ? किसी के गुण, स्वभाव को धारण करने की विशेषता केवल चेतन सत्ता में ही सम्भव है, जड़ पदार्थ में नहीं।

विद्यार्थी—जीवात्मा अणु है या विभु ?

महात्मा—जीवात्मा अणु अर्थात् अल्पज्ञ व एकदेशीय है ; और परमात्मा ही विभु अर्थात् सर्वज्ञ व सर्वदेशीय है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आखिर यह जीवात्मा क्या है ?

महात्मा—जीवात्मा एक यात्री है जो मोक्ष अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है। आत्मा उस नदी की धारा के समान है जो नदी के दो किनारों के मध्य बह रही है। किनारों के मध्य बहने वाली धारा को यदि आप ध्यान से देखेंगे तो विदित होगा कि वह कहीं से आ रही है; और कहीं अपने लक्ष्य की ओर जा रही है। इसी प्रकार शरीर के मध्य आत्मतत्व नदी की बहने वाली धारा के समान कहीं से आ रहा है; और कहीं जा रहा है। शरीर के किनारों में बंधा यह शरीर रूप में बधा दिखलाई देता है; परन्तु यह इससे सर्वथा भिन्न है।

विद्यार्थी— महात्मा जी! कुछ लोगों का विश्वास है कि शरीर ही 'मैं' हूँ। इसके अतिरिक्त जीवात्मा कुछ नहीं है।

महात्मा—यदि शरीर ही 'मैं' हूँ तो मृत्यु के समय शरीर के रहने पर भी 'मैं' कहाँ चला जाता है? इसलिये शरीर को मैं समझना ही भारी भूल है।

विद्यार्थी -यदि शरीर को ही 'मैं' मान लिया जाय तो क्या हानि है?

महात्मा—इसमें हानि-लाभ का प्रश्न नहीं है जो वस्तु जैसी है, उसको वैसा ही मानने में हित है। उसके विपरीत मानने में हानि ही हानि है। जैसे यदि हम शरीर को ही 'मैं' स्वीकार कर लें तो फिर मानव का लक्ष्य स्वाभाविक रूप से खाओ-पीओ मौज उड़ाओ बन जायगा अर्थात् भोगवाद ही हमारा ध्येय हो जायगा। यदि आत्मा की सत्ता स्वीकार कर आगे बढ़ा जाय, तो फिर अध्यात्मवाद का उदय होता है।

संसार में भोगवाद तथा अध्यात्मवादी दो संस्कृतियों के जन्म का कारण ही "मैं" के सम्बन्ध में उपर्युक्त दो दृष्टिकोण ही हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी! तो आपकी दृष्टि में शरीर कुछ नहीं "आत्मा" ही सब कुछ है?

महात्मा—आत्मा साधक है और शरीर साधन है। इन दोनों के सम्बन्ध को उपनिषद् में बड़े ही सुन्दर रूप में इस प्रकार वर्णन किया है—"शरीर एक रथ है जिसमें दस इन्द्रियाँ घोड़ों के समान, मन इन घोड़ों की लगाम, बुद्धि सारथी तथा आत्मा इस रथ में बैठे यात्री के समान है, इसलिये शरीर 'मैं' न होकर 'मैं' की गाड़ी है।

फलतः मैं भोग नहीं भोक्ता हूँ। दृश्य नहीं दृष्टा हूँ, श्रुति नहीं श्रोता हूँ।

इन्द्रियों का दास नहीं अपितु स्वामी हूँ। परन्तु शरीर को 'मैं' मान लेने पर जीवात्मा भोग, दृश्य, श्रुति का स्वामी बनने के स्थान पर दास बनता जायगा। ऐसी स्थिति में जीवात्मा अथवा 'मैं' को क्या हानि होगी इसका आप स्वयं अनुमान लगावें।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हम अपने को शरीर से भिन्न अनुभव नहीं करते। यदि आत्म तत्व शरीर से भिन्न होता तो फिर वह अपने को शरीर क्यों अनुभव करता ?

महात्मा—आत्म तत्व अपने को शरीर समझता है इसका कारण यह है कि आत्मा में विशेषताएँ हैं, पहली यह, जिसके सम्पर्क में आता है उसी के अनुरूप अपने को अनुभव करता है ; और दूसरी यह है कि मुक्ति के लिये बेचैन रहता है। अतः शरीर के सम्पर्क में आने पर स्वभावानुसार आत्मा अपने को शरीर अनुभव करने लगता है ; परन्तु शारीरिक सुख दुःख, जीवन-मृत्यु की श्रृंखला से बेचैन होकर मुक्ति अथवा पूर्ण आनन्द के लिये भी बेचैन रहता है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! सम्पर्क में आने वाली वस्तु के अनुरूप ही बनने व समझने का गुण तो आत्मा का अच्छा नहीं है।

महात्मा—बच्चो ! यदि आत्मा में यह गुण न होता तो मोक्ष तो दूर रहा यह जीवन भी उसके लिये नरक समान बन जाता। इसी गुण के कारण आत्मा लंगड़े, लूले, अन्धे, कुरूप व अस्वरूप शरीर को पाकर भी उसके तदनुरूप होकर सरलता से जीवन व्यतीत कर देता है अन्यथा उसके लिये इन शरीरों में उसका एक क्षण भी रहना कठिन हो जाय। जैसे सुन्दर-स्वस्थ शरीर रखने वाला धनी व्यक्ति जब दुर्घटनाग्रस्त होकर अपंग एवं निर्धन बन जाता है, तो फिर आत्मतत्व इसी अपने तदुरूपता के गुण के सहारे अपने को बड़ी सरलता से परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेता है।

अपने इस तदनुरूपता के गुण के कारण ही जब यह आत्मतत्व प्रकृति के सम्पर्क में आता है तो यह अपने को प्रकृति समझने लगता है ; परन्तु जब यह ईश्वरोपासना या ध्यान-योग के द्वारा ब्रह्म के समीप पहुँचता है तो फिर यह ब्रह्म के गुणों को अपनाकर ब्रह्मरूप समझ परमानन्द प्राप्त करता है। यदि इसमें यह गुण न होता तो मोक्ष की प्राप्ति में इसे बड़ी कठिनाई हो जाती।

विद्यार्थी—यदि जीवात्मा स्वतन्त्र, चेतन, अनादि अथवा अमर है तो फिर व जड़ प्रकृति के जाल में कैसे फँस गया ?

महात्मा—जाल में फँसा नहीं अपितु इसने जानबूझकर इसका सहारा लिया है। जीवात्मा कर्म के द्वारा अपनी उन्नति व विकास कर परमात्मा के समान महान् बनने का अभिलाषी है। शरीर के बिना कर्म सम्भव नहीं। इसलिये इसने अपनी उन्नति व विकास के लिये जड़ प्रकृति का सहारा पकड़ा है। इन दोनों का सम्बन्ध लंगड़े और अन्धे का सम्बन्ध है। अर्थात् जीवात्मा लंगड़ा और प्रकृति अन्धी है। इसलिये लंगड़ा जीवात्मा अन्धी प्रकृति के कन्धे पर चढ़कर अपनी यात्रा पर अग्रसर हो रहा है। इससे प्रकृति और जीवात्मा दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में प्रगति कर रहे हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! प्रकृति का सहारा लेकर जीवात्मा और प्रकृति किस प्रकार प्रगति कर रहे हैं इसे कृपया विस्तार से समझाइये।

अपनी घड़ी की ओर देखते हुए महात्मा जी ने कहा—बच्चो ! यह प्रश्न इतना जटिल है कि थोड़े समय में समझाना कठिन होगा। इसलिये कल पुनः इसी प्रश्न पर चर्चा होगी। शान्ति-पाठ के साथ सभा समाप्त हुई।

२१

अपने को कैसे जानें ?

महात्मा जी ने प्रार्थना-गायन एवं वेद-मन्त्र-पाठ के पश्चात् बड़ी गम्भीर मुद्रा में बोलते हुए कहा—कल किस बच्चे ने प्रश्न किया था ? उसे अपना प्रश्न आज पुनः रखना चाहिए।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आप ने कल कहा था कि आत्मतत्व प्रकृति का सहारा लेकर अपना बिकास कर रहा है, और उसके सहारे प्रकृति भी विकास को प्राप्त हो रही है—सो कैसे ?

महात्मा—बच्चो ! आत्मतत्व के इस विकास को भौतिक-वादियों ने भी दूसरे शब्दों में स्वीकार किया है। उनकी समझ में अभी तक पूरा रहस्य तो नहीं आया; परन्तु सत्यता अवश्य उनके सन्मुख खड़ी हो गई है। वैज्ञा-

निकों का कहना है कि प्रकृति से चेतन सत्ता ने जन्म लेकर सृष्टि के आरम्भ से ही प्रगति करना आरम्भ किया है; और अब भी लगातार प्रगति कर रही है। उनका कहना है कि अमीबा अर्थात् चेतन तत्व आवश्यकता, परिस्थिति एवं लगातार अभ्यास के कारण मछली, मेंढ़क, गिलहरी आदि विभिन्न पशु-पक्षियों का रूप धारण करता हुआ बन्दर बना; और बन्दर से मानव बन गया; और मानव से भी आगे महामानव बनने के लिए प्रयत्नशील है। यह मान्यता डारविन सिद्धान्त से प्रख्यात् है। डारविन महोदय ने बड़े परिश्रम व खोज के पश्चात् इस आश्चर्यजनक महान् खोज को संसार के सन्मुख उपस्थित किया। यह बात सत्य है कि डारविन के सिद्धान्त के सन्मुख कई प्रश्न ऐसे उपस्थित हैं जिनका उत्तर डारविन सिद्धान्त देने में असमर्थ है; परन्तु इस सिद्धान्त पर संसार के समस्त वैज्ञानिक एकमत हैं कि चेतन तत्व प्रकृति के सहारे लगातार प्रगति कर रहा है।

भारत के महायोगी श्री अरविन्द ने आत्म-तत्व की इस प्रगति अथवा विकास का इस प्रकार वर्णन किया है कि आत्मा ने प्रकृति का सहारा लेकर सर्वप्रथम अन्नमय कोष अर्थात् वनस्पति का रूप धारण किया, फिर एक पग आगे बढ़कर उसने शरीर के साथ प्राण को धारण कर पशु-पक्षियों की योनियाँ प्राप्त कीं; और इससे आगे प्रगति करने पर यह शरीर और प्राण के अतिरिक्त मन व मस्तिष्क को प्राप्त कर मानव बना; और अब इससे आगे वह अति मानव बनने की दिशा में बढ़ रहा है।

वैदिक दर्शन का मत है कि सृष्टि के आदिकाल से ही प्रत्येक मानव अन्नमय कोष (शरीर), प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमयकोष तथा आनन्दमयकोष लेकर ही उत्पन्न होता है। अज्ञानकर्म बन्धनों के फलस्वरूप वहुधा आत्मतत्व, अन्नमय कोष अर्थात् शरीर तक ही सीमित रह जाता है; परन्तु यदि मानव तत्वज्ञान तथा कर्मयोग का सहारा लेकर आगे बढ़े तो वह एक ही जीवन में पाँचों कोषों को प्राप्त कर सकता है। परन्तु इसके बढ़ने का क्रम अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष व आनन्द मय कोष ही होगा, अर्थात् शरीर के विभिन्न कोषों से होता हुआ ही यह मोक्ष को प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार प्रकृति और आत्मतत्व के मिलन से ही संसार में सर्वत्र प्रगति है। चेतन तत्व के बिना प्रकृति विकृति अर्थात् सृष्टि का रूप धारण ही नहीं

कर सकती है। भले ही वैज्ञानिक इस चेतन तत्व की उत्पत्ति व स्वरूप पर मतभेद रखते हैं; परन्तु वे इस जड़ जगत् की रचना व प्रगति में इस चेतन तत्व का प्रमुख हाथ मानते हैं।

विद्यार्थी – महात्मा जी ! जड़ प्रकृति की रचना तथा विकास में चेतन तत्व का प्रमुख हाथ है, इसका क्या प्रमाण है ?

महात्मा—संसार के समस्त वैज्ञागिक इस वात को मानते हैं कि मैटर और गति में समन्वय होने पर ही रचना का प्रारम्भ होता है। जड़ प्रगति को गति किसने प्रदान की—यही वह प्रश्न है जिसे वैज्ञानिक अभी तक हल नहीं कर सके हैं, वास्तव में उसे यह गति चेतन तत्व परमात्मा और बाद में आत्मतत्व से ही प्राप्त हुई है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपने अभी अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष, व आनन्दमय कोष आत्मतत्व की प्रगति व विकास के क्रम वतलाये थे; परन्तु अभी आपने परमात्मा को बीच में घसीट लिया, सो परमात्मा के कारण प्रकृति का कौन-सा विकास होता है ?

महात्मा—बच्चे। सृष्टि-रचना से पूर्व प्रकृति सत्, रज, तम की साम्यावस्था में थी। आदि सृष्टि में परमात्मा ने ही इसे गति प्रदान कर रचना की ओर अग्रसर किया फिर इस प्रकृति ने परमात्मतत्व के सहारे से अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, ईश्वर आदि का क्रम से विकास किया।

विद्यार्थी—कुछ मतावलम्बियों का मत है कि पशु-पक्षी में आत्मा नहीं होता। यह तो भगवान् ने मनुष्य के लिये चलती-फिरती साग-सब्जियां उत्पन्न की हैं। इसे आप कैसे कहते हैं कि पशु-पक्षियों में भी आत्मतत्व है।

महात्मा—आत्म तत्व की पहचान के प्रमुख तीन गुण हैं अर्थात् सुख दुःख अनुभव करना, प्रयत्नशीलता अपने बचाव का प्रयत्न करना। यह तीनों ही गुण पशु-पक्षियों में विद्यमान हैं। मनुष्य के समान ही पशु-पक्षी सुख दुःख अनुभव करते हैं, आपस में प्यार करते हैं; माता-पिता स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र आदि का मधुर सम्बन्ध उनमे भी मनुष्यों की भाँति होता है; और एक-दूसरे से वियोग होने पर मनुष्यों की भाँति उनमें भी वेचैनी व वेदना होती है। ऐसी अवस्था में यदि कोई पशु-पक्षी में जीवात्मा का होना न माने तो यह उसकी अज्ञानता का ही प्रतीक हो सकता है।

विद्यार्थी—क्या पशु-पक्षी का आत्मतत्व मनुष्यों के आत्मतत्व से भिन्न है ?

महात्मा—बिल्कुल नहीं ! जीवात्मा ही अपने कर्मानुसार पशु-पक्षी, आदि योनियों में जाता है ।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! कुछ मतावलम्बियों का यह विचार है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर ने मनुष्य को ही बनाया स्त्री को नहीं । स्त्री को मनुष्य के अन्दर से अर्थात् उसके शरीर से बनाया । इस प्रकार स्त्री जाति में उनके मतानुसार आत्मतत्व नहीं होता है ।

महात्मा—स्त्री जाति में आत्म तत्व का न मानना मूर्खता की चरम सीमा है । स्वयं विज्ञान भी स्त्री-पुरुष के आत्मतत्व को समान ही मानता है । विज्ञान की दृष्टि में समस्त प्राणियों में चेतन तत्व एक ही है। हाँ वह विभिन्न योनियों में विकास की विभिन्न अवस्थाओं में है ।

विद्यार्थी—क्या स्त्री-पुरुष के आत्म-तत्व में भेद होता है या एक समान ही होता है ?

महात्मा—बच्चो ! स्त्री-पुरुष आदि लिंग भेद आत्मा के नहीं अपितु शरीर के ही हैं । अपने कर्मों के अनुसार आत्मतत्व विभिन्न योनियों को प्राप्त होता रहता है । उसमें लिंगभेद या जाति-भेद नहीं होता ।

विद्यार्थी—कुछ लोगों का कहना है कि योगी लोग अपने आत्म-तत्व को इतना विकसित कर लेते हैं कि वह एक स्थान पर बैठे सैंकड़ों दूर की घटना को देख व सुन सकते हैं; और इसी प्रकार के अलौकिक चमत्कार करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं; यह कहाँ तक सत्य है ?

महात्मा—जड़ प्रकृति की अपेक्षा आत्म-तत्व में हजारों लाखों गुना शक्ति का भण्डार भरा पड़ा है । जब जड़ प्रकृति के एक छोटे अणु में अणुशक्ति की अथाह शक्ति भरी है तो आत्मतत्व की शक्ति की आप स्वयं कल्पना कर सकते हैं । अतः यह बात सत्य है कि योगी गण अपने स्थान पर बैठे दूर की बातों को सुन सकते हैं; और घटनाओं को देख सकते हैं ।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! पुस्तकों में ऐसा लिखा है; और उसी के आधार पर लोग इन बातों पर विश्वास करते आये हैं; परन्तु क्या आप वैज्ञानिक आधार पर इस तथ्य को सत्य सिद्ध कर सकते हैं ?

महात्मा—देखने-सुनने की शारीरिक आँख-नाक इन्द्रियों के अतिरिक्त आत्मतत्व के पास अपने सूक्ष्म शरीर में भी देखने-सुनने की गुप्त शक्तियाँ

छिपी हैं। उस भौतिक शरीर से अलग होकर जब आत्मतत्व अपने सूक्ष्म शरीर की शक्तियों को जागृत करता है तो फिर उसके देखने-सुनने की शक्ति में स्थान की दूरी बाधक नही बन पाती है। वैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक शब्द व रूप आकाश का अंग बन जाते है; और उन्हें संसार के किसी भी भाग में सुना व देखा जा सकता हैं। रेडियो और टेलीविज़न आज इस उपर्युक्त तथ्य के साक्षी हैं। इसलिए इन्हें सिद्ध करने के निमित्त अधिक युक्तियों की आवश्यकता नहीं हैं।

जब जड़ पदार्थ रेडियो तथा टेलीविज़न हजारों मील पर हुई घटना को सर्वत्र उपस्थित करने की क्षमता रखते है तो फिर आत्मतत्व में ऐसा कर सकने की क्षमता क्यों नहीं हो सकती है? आप पृथ्वी की बात करते हैं अब तो विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि चन्द्रमा पर लिये चित्र सीधे उसी समय टेलीविजन पर प्रसारित हो जाते हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! जब आत्मा में अथाह शक्ति भरी पड़ी हो तो फिर हम उस शक्ति का लाभ क्यों नहीं उठाते हैं ?

महात्मा—यही तो रोना है। आज मानव, समुद्र, पहाड़, नदी, नाले व चन्द्रमा की खोज करता फिरता है; परन्तु वह अपनी खोज करने की कभी कोशिश ही नहीं करता है। इसीलिये भटकता फिरता है। यदि वह भौतिक जगत् की खोज के साथ अपनी भी खोज करने लगे तो फिर संसार स्वर्ग बन जाय। यही भारतीय संस्कृति की संसार को विशेष देन है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! यदि आत्मा अमर है तो फिर मृत्यु के समय यह कहाँ चली जाती है ? लोगों का कहना है कि मृत्यु के पश्चात् आत्मतत्व का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसमें आपका क्या मत है ?

महात्मा—मृत्यु क्या है ? मृत्यु के समय आत्मतत्व कहाँ चला जाता है ? यह प्रश्न बड़े जटिल हैं और समयाभाव के कारण आज इन प्रश्नों के साथ न्याय करना संभव नहीं, इन पर कल विचार करेंगे।

२२

मृत्यु क्या है ?

आज प्रार्थना-सभा में वृद्ध स्त्री-पुरुषों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी। आज का घोषित विषय मृत्यु क्या है ? उन्हें खींचकर ले आया है। मृत्यु के बारे में सबसे अधिक चिन्ता वृद्धों को ही होती है ; और आँखों की ज्योति समाप्त हो जाने पर चाहे संसार की अन्य वस्तु दिखाई न देती हो उन्हें मृत्यु पहले से भी अधिक साफ़ दिखलाई देने लगती है। मृत्यु से बचाव की खोज में ही या उसके चिन्तन में ही उनका अधिकांश जीवन व्यतीत होता है। उनका यही चिन्तन व खोज उन्हें आज नगर से दूर विद्यार्थियों के मध्य खींच लाया है। उनकी दृष्टि महात्मा जी पर टकटकी बाँधे लगी हैं। महात्मा जी भी आज बड़ी ही गम्भीर मुद्रा में बैठे हैं। मृत्यु से भयभीत होकर नहीं अपितु विषय की गम्भीरता ने उन्हें गम्भीर बना दिया है। समय होते ही उनकी वाणी ने वेद-मन्त्रों के मधुर गान से वातावरण को पवित्र बना दिया। वेद-मन्त्रों के पश्चात् आज उन्होंने गीता के उन श्लोकों का भी पाठ किया जिनमें मृत्यु का वर्णन है।

वेद-पाठ के पश्चात् महात्मा जी ने मुस्कराहट के साथ विद्यार्थियों को सम्बोधन करते हुए कहा—बच्चो ! आज का विषय आपको रुचिकर होगा या नहीं इसमें मुझे सन्देह है ; परन्तु यह बात सत्य है कि संसार के बड़े-बड़े दार्शनिकों को जन्म देने वाला यही प्रश्न रहा है। इसी को जानने और इससे पीछा छुटाने के निमित्त धर्म गुरुओं ने इसकी अपने-अपने ढंग से व्याख्या की है। चीऊँटी से लेकर मनुष्य तक यदि किसी के नाम व दर्शन से काँप जाता है तो वह मृत्यु ही है। इसके आने पर बड़े-बड़े सूरमाओं और विश्व विजेताओं के भी होश फाख्ता हो जाते हैं ; परन्तु संसार में ऐसी वीरात्माओं का भी कभी अभाव नहीं रहा जिन्होंने मृत्यु को मित्र मानकर उसको हँसते-हंसते

आलिंगन किया या जिन्होंने मृत्यु को भी भयभीत बना दिया या जिन्होंने मृत्यु पर पूर्ण अधिकार कर लिया। भीष्मपितामह, बन्दा वीर वैरागी, हकीकत, स्वामी दयानन्द, रामप्रसाद बिस्मिल, भगतसिंह आदि उन्हीं वीरात्माओं में से हैं।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! मृत्यु डरावनी है यह एक तथ्य है ; परन्तु यह समझ में नहीं आया कि फिर यह मित्र या अच्छी कैसे बन सकती है ?

महात्मा—बच्चो ! एक वस्तु के विभिन्न कोणों से फोटो खींचने पर उसके विभिन्न रूप दिखलाई देते हैं। इसी प्रकार मृत्यु को भी विभिन्न भावनाओं व दृष्टि से देखने पर इसके रूप भी पृथक्-पृथक् दिखलाई देते हैं। वास्तव में मृत्यु का रूप तो प्यारा ही है ; परन्तु जब मनुष्य इसे ममता के चश्मे से देखता है तो यह डरावना लगता है ; और जब ज्ञान के चक्षु से इसे देखा जाता है तो मृत्यु बड़ी प्यारी व मित्र प्रतीत होती है।

भौतिकवादी व्यक्ति जो आत्मा को मैटर अथवा रसायनिक परिणाम मानते हैं ; उसके लिए अवश्य मृत्यु भय का रूप होता है। उनका इस भय से छुटकारा होना सर्वथा असम्भव है ; क्योंकि उनके लिए तो मृत्यु उनसे जीवन का 'सदैव के लिए अन्त' का सन्देश लेकर आता है। ऐसी अवस्था में मृत्यु को देखकर भयभीत होना स्वाभाविक ही है।

विद्यार्थी—मृत्यु जीवन के अन्त का ही दूसरा नाम है। यदि कोई व्यक्ति अज्ञानतावश या अपने को धोखा देने के लिए इसे दूसरे रूप में देखे तो फिर इससे सत्यता थोड़े ही छिपाई जा सकती है ? मेरी दृष्टि में तो भौतिकवादियों की मान्यता ही सत्य है और मृत्यु को प्यारी या मित्र कहना एक धोखा मात्रहै।

महात्मा—बच्चे ! भौतिकवाद का मूलाधार विज्ञान स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करता है कि किसी वस्तु का सर्वांश में विनाश कभी नहीं होता अपितु उसका स्वरूप मात्र बदल जाता है। ऐसी अवस्था में मृत्यु को सदैव के लिये जीवन का अन्त मानना भूल है। मृत्यु शरीरान्त का नाम है जीवनान्त कदापि नहीं है। मृत्यु के पश्चात् शरीर के रूप का अन्त हो जाता है ; परन्तु वे पांच भौतिक पदार्थ जिनसे शरीर बना है शरीरान्त के पश्चात् भी उपस्थित रहते हैं। जब भौतिक तत्व का मृत्यु होने पर अन्त नहीं होता, फिर भौतिक तत्वों से भी अति सूक्ष्म आत्म तत्व का अन्त मानना अज्ञानता के अतिरिक्त अन्य क्या है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! मृत्यु के पश्चात् भले ही भौतिक तत्व व आत्म तत्व उपस्थित रहते हों, परन्तु उनकी यह जीवन-लीला तो समाप्त हो जाती है। इससे आप कैसे इंकार कर सकते हैं ?

महात्मा — मृत्यु के साथ क्या संसार में आपको जन्म नहीं दिखलाई देता है। मृत्यु और जन्म दोनों ही घटनाएँ साथ-साथ हो रही हैं। क्या जन्म इस बात को सिद्ध नहीं कर रहे हैं कि विघटन-सृजन, विनाश-निर्माण अथवा मृत्यु-जन्म दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। यदि ऐसा है तो फिर आप मृत्यु को वर्तमान जीवन का अन्त भले ही मान लें परन्तु उसे जीवन का अन्त नहीं कह सकते हैं; क्योंकि वह मृत्यु के पश्चात् जीवन के रूप में पुनः प्रारम्भ हो जाता है।

विद्यार्थी—आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि जो जन्म हो रहे हैं वे मृत्यु-प्राप्त शरीर व आत्माओं के ही हो रहे हैं। यह जन्म पूर्णतः नये शरीर और आत्माओं के भी तो सम्भव हैं।

महात्मा—वर्तमान जन्म पूर्णतः नये सिद्ध करना बड़ा कठिन है। विभिन्न शरीरों से निकले आत्मा ही नये शरीर धारण कर आ रहे हैं यही बात सत्य है। यह बात तो सत्य ही है कि जन्म के समय नये शरीर का प्रादुर्भाव हो रहा है; परन्तु यह नया शरीर बना उस पदार्थ से है जो पहले शरीर के अन्त हो जाने पर पाँच भौतिक तत्वों में मिल गया था। वास्तव में पांच भौतिक तत्वों के मिलन का नाम जन्म और इनका वियोग ही मृत्यु कहाता है। विज्ञान के सिद्धान्तानुसार भौतिक तत्वों के मिलन और वियोग की यह प्रक्रिया अनादि है सादि नहीं।

क्या जन्म के समय नये शरीर में आने वाला आत्मा भी नया है ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जो वस्तु परमाणुओं के मेल से बनती है उसका ही मिलन और विघटन होता है; परन्तु आत्म तत्व अमर व अनादि है और एक ही तत्व है। इसलिए इसके नये रूप धारण करने का प्रश्न नही नहीं उठता है।

विद्यार्थी—हमारी मान्यता तो यह है कि जन्म के समय नये शरीर के साथ पूर्णतया नया आत्मा आता है पहला नहीं। इसे असत्य सिद्ध करने के लिए आपके पास क्या युक्ति है ?

महात्मा — यदि जन्म लेने वाला आत्मा सर्वथा नया है तो यह जन्म लेने से पूर्व कहाँ था; और मृत्यु के पश्चात् कहाँ चला जाता है ?

विद्यार्थी—मृत्यु के पश्चात् आत्मा कहाँ जाता है यह तो आप ही

बतलायें। हमारी मान्यता तो पूर्ववत् है कि शरीर के साथ ही इसकी भी समाप्ति हो जाती है।

महात्मा—यदि जन्म लेने वाला आत्मा नया है तो इन जन्म लेने वाले आत्माओं में से कोई आत्मा सुन्दर धनी परिवार शरीर में लेकर जन्म ले रहा है और कोई आत्मा भिखारी के घर अन्धे, लंगड़े व कुरूप के रूप में शरीर धारण कर रहा है इस विभेद का क्या कारण है ? क्या ईश्वर अन्यायकारी है जो इनके बिना किसी कर्म के इन्हें विभिन्न अवस्थाओं में जन्म दे रहा है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आप की बात सत्य है। जिन लोगों का विश्वास ईश्वर में है और जो ईश्वर को न्यायकारी मानते हैं उनके पास आपके इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है; और उन्हें यह मानना ही पड़ेगा कि पूर्व आत्मा ही अपने पूर्व जन्म के कर्मानुसार विभिन्न योनियों व अवस्थाओं में जन्म ले रहा है; पर मेरे जैसे नास्तिक व्यक्तियों के लिये आपके पास क्याउत्तर है जो ईश्वर को नहीं मानता। आप की बात का भौतिकवादी के पास यही उत्तर है कि विभिन्न खान-पान व अवस्थाओं के कारण ही विभिन्नप्रकार के शरीरों में जीवात्मा का आगमन हो गया है। सो आपके पास इस बात का क्या उत्तर है ?

महात्मा—विज्ञान के अनुसार कारण और कार्य दोनों एक साथ जुड़े हैं। कारण के बिना कार्य का होना सर्वथा असम्भव है। परन्तु हम यह देखते हैं कि बच्चा जन्म लेते ही रोने, हँसने और माँ के स्तनों से दूध खींचने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देता है। यदि जन्म लेने वाला आत्मा पूर्णतः नया है तो फिर वह क्रियाओं का कारण क्या है ? अर्थात् उसने इन क्रियाओं का ज्ञान, अभ्यास न विकास कहाँ किया ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! हाँ इन बातों से तो सिद्ध अवश्य होता है कि जन्म लेने वाली आत्मा नया नहीं अपितु क्रमागत है। परन्तु क्या इससे भी अधिक प्रबल प्रमाण आपके पास है जिससे सिद्ध हो सके कि जन्म लेने वाला आत्मा नया नहीं अपितु पूर्व का ही है ?

महात्मा – संसार में समय-समय पर ऐसी अनेक आत्माओं ने विभिन्न देशों में जन्म लिया है या जन्म लेते रहते हैं जिन्होंने जन्म लेने के पश्चात् बोलने की शक्ति पाते ही अपने पूर्व जन्म की समस्त बातों को बतला दिया। इसके अतिरिक्त जन्म लेने के पश्चात् एकान्त में पड़ा बच्चा जब हँसता या

अकारण रोता है तो क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि वह अपने पूर्व जन्म की बातों को याद करके हँस या रो रहा है ?

विद्यार्थी—कुछ लोगों का यह विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा कब्र में सोता रहता है ; और न्याय के दिन कब्र में से सशरीर उठता है। इस सम्बन्ध में आपका क्या मत है ?

महात्मा—यदि न्याय के दिन ही कर्मों का न्याय होगा ; और जीवात्मा न्याय के दिन तक कब्र में लेटे रहेंगे तो फिर उनके पास इस प्रश्न का उत्तर क्या है कि वर्तमान में जन्म लेने वाली आत्मा के विभिन्न अवस्थाओं में जन्म लेने का कारण क्या है ? अर्थात् उनके कौन से कर्मों का क्या फल है ? यदि बिना कर्म ही उन्हें इस प्रकार ईश्वर ने मनमाने ढंग से उत्पन्न कर दिया है तो उसने उनके साथ अन्याय किया है अथवा इससे ईश्वर अन्यायी सिद्ध हो जाता है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आखिर मृत्यु है क्या ?

महात्मा—मृत्यु और जन्म वास्तव में एक ही क्रिया के दो नाम हैं। जैसे, जब एक अध्यापक अपने घर से स्कूल को चलता है तो उसके बच्चे कहते हैं—"पिताजी जा रहे हैं" ; और स्कूल के विद्यार्थी उन्हें आते हुए देख बोलते हैं—"अध्यापक महोदय आ रहे हैं।" सो अध्यापक के चलने की एक ही क्रिया को कुछ कह रहे हैं—जा रहे हैं ; और कुछ कहते हैं—आ रहे हैं। ठीक इसी प्रकार जीवात्मा की यात्रा को अर्थात् जब वह एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है तो कुछ लोग अज्ञानतावश कहते हैं कि वह जा रहा है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो रहा है ; और कुछ कहते हैं—"जन्म हो रहा है।"

योगीराज कृष्ण महाराज ने अपने महान् गीता-ज्ञान में मृत्यु को अति सुन्दर ढंग से इस प्रकार उपस्थित किया है—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यान्यानि संयाति नवानि देही ॥"

(गीता० २।२२)

जिस प्रकार व्यक्ति पुराने वस्त्रों का परित्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार, जीवात्मा पुराने जर्जर शरीर का परित्याग कर नये शरीर को धारण करता है।

जातस्यहि ध्रुवो मृत्यु र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।।
तस्माद परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितु मर्हसि ।।

(गीता० २ । २७)

जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्य है, और मृत्यु के पश्चात् जन्म अवश्यम्भावी है ।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिवेदना ।।

(२ । २८)

जीवात्मा जन्म से पूर्व अव्यक्त रूप में था ; और मध्य में व्यक्त अथवा सशरीर बना, मृत्यु के पश्चात् फिर अव्यक्त हो जायगा । अर्थात् यात्रा पर चलता रहेगा । इसलिए इसमें शोक करने का क्या कारण है ?

विद्यार्थी—आपने कुछ समय पूर्व कहा था कि मृत्यु प्यारी व मित्र है—यह कैसे ?

महात्मा—बच्चो ! प्रिय और मित्र की सबसे बड़ी पहिचान यही है कि वह माता-पिता के समान हमें सहयोग प्रदान करे ; और संकट के समय हमारी सहायता करे । मृत्यु यही कार्य तो करती है अर्थात् जब वृद्धावस्था में शरीर जीर्ण-शीर्ण होकर जीवन को नरक बना देता है, तो उस समय मृत्यु ही आकर हमें उस नरक से निकालकर अर्थात् उस जीर्ण-शीर्ण शरीर से मुक्ति प्रदान कर नये शरीर में प्रवेश कराती है । सो मृत्यु से बढ़कर मनुष्य का और कौन प्रिय मित्र होगा ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु तो आयेगी ही ; फिर इसके झमेले में पड़कर व्यर्थ समय नष्ट करने से लाभ क्या है ? अर्थात् मृत्यु के सम्बन्ध में विभिन्न मत रखने वाले सभी व्यक्तियों की गति जब एक समान ही होती है फिर मृत्यु को समझने, न समझने या गलत समझने से क्या लाभ-हानि है ?

महात्मा—मृत्यु को न समझने या इसे गलत समझने से व्यक्ति की महान् हानि है ; और इसे सही रूप में जान लेने पर बड़ा भारी लाभ है । प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है । भय सुख का शत्रु होता है । मृत्यु संसार में सबसे अधिक व्यक्ति को भयभीत रखती है ; और साथ ही उसे अपने कर्तव्य के पालन करने से रोकती है । जैसे, व्यक्ति चाहता है कि उसके साथ या समाज

के साथ हो रहे अन्याय-अत्याचार को रोका जाय ; परन्तु जब उसके रोकने में अत्याचारियों की गोली से मृत्यु हो जाने का भय सामने आ जाता है तो फिर वह चुप बैठकर अत्याचार सहन करता रहता है। बुढ़ापा आते देख वह मृत्यु का ध्यान कर रात-दिन भयभीत हो अपनी नींद को खो बैठता है। चिन्ता चिता से भी खतरनाक होती है। इस प्रकार मृत्यु का भय मानव जीवन को सदैव भययुक्त रखकर व्यक्ति को कभी भी पूर्ण सुख का अनुभव नहीं करने देता है ; परन्तु जब मनुष्य यह जान लेता है कि वह अमर है ; और मृत्यु निकम्मे शरीर को छोड़कर नये शरीर को धारण करने का ही दूसरा नाम है तो फिर वह निर्भय बन जाता है। फिर वह मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। मृत्यु का विजेता संसार का विजेता बन जाता है।

मृत्यु को समझ लेने पर मृत्यु कैसे प्यारी बन जाती है या मानव किस प्रकार निर्भय बन जाता है इसका एक उदाहरण देना यहाँ उपयुक्त होगा—पूर्वी अफ्रीका में एक दिन हमारे एक मित्र की मोटर के साथ दुर्घटना हो गई और उसकी मोटर चूर-चूर हो गई। हम इस दुर्घटना को सुनकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने दुर्घटना-स्थल पर पहुँचे तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब हमने उन्हें अपने मित्रों के साथ हँसते, खाते-पीते और टेप-रिकार्डर पर गाने सुनते देखा तो समझ में नहीं आया कि वह सब क्या हो रहा है ? और हमने सहानुभूति के दो शब्द कहकर पूछा कि—"भाई एक ओर आपकी शानदार मोटर दुर्घटना में समाप्त हो गई है ; और दूसरी ओर आप हंस रहे हैं—यह सब क्या है।" तो उन्होंने हँसते हुए कहा—"महात्मा जी, मोटर की दुर्घटना मेरी नहीं अपितु बीमा कम्पनी की हुई है. मुझे तो बीमा कम्पनी नई मोटर खरीदकर देगी। मेरी गाड़ी बीमाशुदा है।" बस इसी प्रकार यदि मानव को यह ज्ञान हो जाय कि उसकी मोटर अर्थात् शरीर ईश्वर की कम्पनी में बीमाशुदा है तो फिर इसके छिनने या छोड़ने पर रंज कैसे हो सकता है ? क्योंकि उसका दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर उसे निश्चित रूप से दूसरी नई मोटर अर्थात् शरीर देगा। इसलिये मृत्यु को सही रूप में समझ लेने पर मानव का जीवन ही बदल जाता है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! मृत्यु के समय बहुधा लोग रोते ही दिखलाई देते हैं, हँसता हुआ तो कोई दिखलाई नहीं देता है।

महात्मा—बच्चो ! आपने अभी इतिहास नहीं पढ़ा। संसार का इतिहास

ऐसे महान् आत्माओं से भरा पड़ा है, जिनके चेहरों पर मृत्यु को देखकर मुस्कराहट आ गई ; और मृत्यु को उनके पास पहुँचने के लिये उनसे आज्ञा लेनी पड़ी। जैसे महर्षि स्वामी दयानन्द ने मृत्यु के समय स्नान किया, नये वस्त्र पहने, शिष्यों-भक्तों को अपने से दूर हटा दिया और वेद-मंत्रों का उच्चारण कर मुस्कराते हुए कहा—"प्रभु, खूब लीला की, खूब खेल रचाया, अच्छा प्रभु, तेरी लीला पूरी हो", यह कहते हुए उहोंने इस संसार से विदा ली।

क्रान्तिकारी रामप्रसाद विस्मिल को जब विदेशी सरकार ने उनकी देश-भक्ति के लिये मृत्यु का दण्ड दिया तो फांसी के तख्ते पर झूलने से पूर्व उन्होंने यह गाना गाया—

दरो दीवार पर हसरत से नजर करते हैं।
खुश रहो अहले वतन, हम तो सफ़र करते हैं।।

२३

मेरा क्या है ?

आज कम्युनिस्ट नास्तिक अध्यापक पुनः सक्रिय दिखलाई पड़ रहा है। कई वरिष्ठ विद्यार्थी उसके समीप कागज-पैन्सिल लिये बैठे हैं। उसके चेहरे से ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे वह आज महात्मा जी पर विशेष आक्रमण की तैयारी में है। महात्मा जी भी आज विशेष मुद्रा में हैं। उनके चेहरे पर गम्भीरता के स्थान पर लगातार हँसी-मुस्कान अठखेलियाँ खेल रही है। ऐसा लगता है कि पहिले दिन विषय की घोषणा न होने से उनका मस्तिष्क विशेष विचारों से बँधा न होकर स्वतंत्र विचरण कर रहा है। स्वतंत्रता और निश्चिन्तता का परिणाम मुस्कान तो होता ही है।

विधिवत् प्रार्थना व संगीत होने के पश्चात् महात्मा जी ने विद्यार्थियों को अपनी इच्छानुसार विषय उपस्थित करने का आमन्त्रण दिया। इस पर नास्तिक अध्यापक महोदय के संकेत पर एक विद्यार्थी ने इस प्रकार विषय

को उपस्थित किया—

विद्यार्थी—कृपया आज इस विषय पर प्रकाश डालिये कि मेरा क्या है ?

महात्मा – बच्चो ! विषय बड़ा गम्भीर व महत्त्वपूर्ण है। अपने को जान लेने के पश्चात् मानव का प्रमुख कर्तव्य यही है कि अपने कर्तव्य और अधिकार दोनों को जाने। इन्हें न जानने तथा इनके अनुकूल आचरण न करने से ही आज ससार में दुःख व अशान्ति व्याप्त है। यदि सब लोग अपना कर्तव्य पालन करने लगें, और अपने ही अधिकार को प्राप्त करें तो फिर संसार से संघर्ष नाम की वस्तु ही समाप्त हो जाय ; और सर्वत्र राम राज्य की स्थापना हो जाए ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! क्षमा कीजियेगा, आपने मेरे प्रश्न को नहीं समझा। मैंने केवल यही पूछा है कि मेरा अपना इस संसार में क्या है अर्थात् मेरा अधिकार क्या है ? परन्तु आपने इसके साथ कर्तव्य को अपनी ओर से जोड़कर मेरे प्रश्न को ही उल्टा कर दिया।

महात्मा—बच्चे ! कर्तव्य और अधिकार दोनों जुड़े हैं। कर्तव्य से ही अधिकार का जन्म होता है। कर्तव्य के बिना अधिकार की कल्पना करना ही पागलपन है। भला बीज के बिना वृक्ष की कभी कल्पना की जा सकती है ? कर्तव्य के बिना अधिकार की कल्पना स्पष्ट चोरी, डाका, अन्याय व अत्याचार है।

विद्यार्थी—क्या चोरी-डाका, अन्याय व अत्याचार कर्तव्य नहीं हैं ?

महात्मा—चोरी, डाका कर्तव्य नहीं कर्म हैं। वही कर्म कर्तव्य कहाता है जो दूसरों के कर्तव्य व अधिकार का हनन व अपहरण न कर मानव व मानव समाज की उन्नति व सुख-शान्ति के लिये किया जाता है। इसके विपरीत कर्म कर्तव्य नहीं पाप-कर्म की कोटि में आते हैं।

पाप, कर्म और कर्तव्य में भेद जान लेने के पश्चात् भी प्रत्येक कर्तव्य प्रत्येक मनुष्य के लिये नहीं होता है। वही कर्तव्य व्यक्ति का अपना कर्तव्य होता है, जो उसके पुनीत लक्ष्य की पूर्ति करने वाला हो। अन्यथा उस कर्तव्य का उसे इच्छित फल व अधिकार प्राप्त नहीं होगा। इसलिये जीवन में सफलता व अधिकार प्राप्त करने के लिये यह परम आवश्यक है कि व्यक्ति कर्म-क्षेत्र में उतरने से पूर्व यह जान ले कि मेरा कर्तव्य क्या है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! पूंजीपतियों द्वारा चलाया यह बड़ा भारी

षड्यन्त्र है कि लोगों को अपने कर्तव्य का ही भान कराओ—अधिकार का नहीं। आपने भी आज कर्तव्य को ही प्रमुखता देकर पूंजीपतियों की इच्छानुसार ही उपदेश दिया है। यही कारण है कि आज संसार में गरीबों का शोषण हो रहा है। जो अपना कर्तव्य कर रहा है वह भूखा, नंगा, घर विहीन है, और जो अपने कर्तव्य का लेशमात्र भी पालन नहीं करता वह धन-सम्पत्ति के मालिक बने बैठे हैं। आप भी कर्तव्य के नाम पर पूंजीपतियों का समर्थन कर रहे हैं।

महात्मा—बच्चे ! मैं आपकी भावना व वेदना का आदर करता हूँ ; परन्तु कर्तव्य पालन करने के उपदेश को पूंजीपतियों का षड्यन्त्र कहना व समझना भूल है। यही कारण है कि आज मिलों व फैक्ट्रियों में सर्वत्र अधिकारों की लड़ाई चल रही है ; और कर्तव्य की उपेक्षा हो रही है। हर मज़दूर काम कम और अधिकार अधिक चाहता है ! काम के बिना अधिकार की माँग व प्राप्ति ही तो पूंजीवाद है। कर्तव्य न करना या कर्म के बिना फल की इच्छा करना अधर्म व पाप है। कर्तव्य-हत्या व धर्म-हत्या एक ही बात है। शास्त्रों में लिखा है कि जो व्यक्ति धर्म की हत्या करता है धर्म उसकी हत्या कर देता है।

आपने कहा है कि कर्म करने वाले मजदूर भूखे-नंगे ; और कर्म न करने वाले धनी बने बैठे हैं। परन्तु यह अवस्था कर्तव्य-पालन करने का परिणाम नहीं अपितु अपने कर्त्तव्य का पालन न करने का ही फल है। ईमानदारी के साथ कर्तव्य करना या किसी वस्तु को उत्पन्न कर देना ही कर्तव्य नहीं है अपितु उस कर्तव्य से उत्पन्न फल की रक्षा व प्राप्ति करना भी उसी कर्तव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। इस प्रकार दोनों कर्तव्यों का पालन करते हुए ही व्यक्ति फल की आशा कर सकता है, अधूरे कर्तव्य के बल पर नहीं। जैसे यदि एक किसान रात-दिन परिश्रम करके खेती उत्पन्न करे, परन्तु खेती पक जाने पर उसकी रक्षा न करे तो फिर अन्यों द्वारा खेती का लूटा जाना स्वाभाविक है। यदि मजदूर कारखानों में वस्तुओं का केवल उत्पादन करना ही अपना कर्तव्य न समझ कर उस परिश्रम का उचित मूल्य प्राप्त करने का भी प्रयास करे तो फिर पूंजीपति किस प्रकार उसका शोषण कर सकेंगे ?

विद्यार्थी—अपने कर्तव्य को जानने का सरल उपाय क्या है ?

महात्मा—अपने कर्तव्य को जानने का एकमात्र उपाय अपने लक्ष्य को पहचानना है। लक्ष्य के जाने बिना अपने कर्तव्य को जानना असम्भव है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! अपने कर्तव्य को पहचानना तो कठिन है, परन्तु अपने अधिकार को तो लगभग सभी व्यक्ति जानते हैं। इस पर आपने इतना अधिक बल क्यों दिया ?

महात्मा—अपने अधिकार को समझना बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य है। दुर्भाग्यवश इसे न जानने के कारण ही व्यक्ति बड़ी भारी उलझन व कष्टों में पड़ जाता है। जब व्यक्ति अज्ञानतावश उन वस्तुओं व अधिकारों को अपना मान बैठता है जो उसके नहीं हैं, तो फिर उनके छिनने पर और उसके कुपरिणाम-स्वरूप उसे कष्ट होना स्वाभाविक है। वास्तव में देखा जाय तो दूसरों के अधिकारों के हनन ने ही आज वर्ग संघर्ष को जन्म दिया है। वर्तमान आर्थिक विषमता इसी का कुपरिणाम है।

विद्यार्थी—क्या कर्तव्य की भाँति अधिकार के भी कई प्रकार होते हैं ? यदि हाँ तो क्या ?

महात्मा—अधिकार दो प्रकार के होते हैं अर्थात् एक संवैधानिक प्रयोग अधिकार और पूर्ण अधिकार। संवैधानिक प्रयोग अधिकार वह होता है जिसमें वस्तु अपनी नहीं होती है, परन्तु उसके प्रयोग का अधिकार होता है। वस्तु आपके पास कब तक रहेगी या आपसे कब छीन ली जायगी यह आप की इच्छा पर नहीं अपितु वस्तु के देने वाले की इच्छा व निर्णय पर निर्भर करेगा। इस प्रकार अपने परिश्रम द्वारा प्राप्त संसार की समस्त भोग-सामग्रियों के हम पूर्ण स्वामी नहीं अपितु इन पर हमारा केवल प्रयोगाधिकार है। उन्हीं वस्तुओं के हम पूर्ण स्वामी हैं जिन्हें कोई हमारी इच्छा के बिना हमसे छीन न सके।

विद्यार्थी—हमारा घर, माता, पिता, भाई, स्त्री, अपना शरीर आदि भौतिक वस्तु हैं, और अपनी हैं। इन्हें हम से हमारी इच्छा के बिना कौन छीन सकता है ? इन पर तो प्रत्यक्ष रूप से हमारा पूर्ण अधिकार है।

महात्मा—भोले बालक ! यही हमारी भयंकर भूल है कि हम इन्हें अपना समझते है। हमें अपनी इस भूल का तब आभास होता है जब मृत्यु आकर हम से इन सबको एक-एक करके, और यहाँ तक कि हमारे अपने शरीर को भी छीन ले जाती है। यदि यह अपनी वस्तु होती तो फिर मृत्यु

किस प्रकार हमसे इन्हें छीनने का साहस कर सकती थी ?

विद्यार्थी—फिर तो संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जिसे हम अपना कह सकें या जिसका हम अपने को पूर्ण स्वामी घोषित कर सकें।

महात्मा—इस जगत् में मनुष्य अपने द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्मों का पूर्ण स्वामी होता है। वह कर्म मृत्यु की शक्ति से बाहर होते हैं। देहावसान के पश्चात् मानव के अपने संचित कर्म ही उसके साथ जाते हैं, और उन्हीं के बल पर उसे आगे जाति, आयु और भोग प्राप्त होते हैं।

विद्यार्थी—प्रयोगाधिकार प्राप्त वस्तुओं की क्या पहिचान है ?

महात्मा—वही वस्तु आपको प्रयोगाधिकार में प्राप्त है जो आपने अपने खून-पसीने को बहाकर ईमानदारी के साथ प्राप्त की है इसके अतिरिक्त अन्य वस्तु चोरी या डाके का माल होगी। उस पर प्रयोगाधिकार समझना भूल ही नहीं अपितु पाप है।

विद्यार्थी—ईमानदारी के साथ परिश्रम द्वारा प्राप्त वस्तु को तो हम अपना कह सकते हैं या उस पर अपना प्रयोगाधिकार समझ सकते हैं ?

महात्मा—ईमानदारी के साथ अपने परिश्रम द्वारा कमाई वस्तु पर अपना प्रयोगाधिकार तो होता है, परन्तु इतने पर भी हम उसे अपना नहीं कह सकते हैं। जैसे, एक व्यक्ति अपने परिश्रम से प्राप्त धन से दूध-घी खरीद सकता है, परन्तु यदि वह बीमार है या उसके प्रयोग करने की उसमें क्षमता नहीं है तो फिर उस वस्तु को उसे अपना नहीं समझना चाहिये। अन्यथा वह लाभ के स्थान पर प्रयोगाधिकार होते हुए भी हानिकारिक सिद्ध होगी। इस प्रकार अपनी भोजनशाला में अपने धन से बनी सामिग्री प्रयोगाधिकार से अपनी होती हुई भी उसमें अपने अनुकूल ही अपनी होती है अन्य नहीं, संसार में धनी लोगों के बहुधा अस्वस्थ रहने का कारण ही यही है कि भोजन करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखते कि कौन भोजन उनका अपना है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपके सिद्धान्तानुसार कर्म ही अपना है, और माता, पिता, पुत्र आदि कोई अपना नहीं है। ऐसी स्थिति में तो फिर आपसी प्रेम का बन्धन समाप्त होकर समाज छिन्न-भिन्न हो जायगा, और सर्वत्र व्यक्तिवाद व वैराग्यवाद फैल जायगा। आपके इस उपदेश से फिर लाभ क्या ?

महात्मा—बच्चे ! सत्य से आँखें बन्द करना घातक होता है। सत्य को सत्य समझ कर फिर उसके अनुकूल अपना जीवन बनाना ही सुखमय होता है जो वस्तु अपनी नहीं दूसरे की है उसे अपना समझना ही अन्याय है। इसके अतिरिक्त दूसरे की वस्तु के प्रति मोह उत्पन्न होने पर जब उसका वियोग होगा तो निश्चित रूप से क्लेश होगा।

जैसे एक व्यक्ति को मार्ग में कोई वस्तु पड़ी मिल गई जिस पर उससे पूर्व उसका कोई अधिकार नहीं था, और न ही वह उसकी है, परन्तु जब उसने उसे उठाकर अपना समझ लिया और दुर्भाग्य से यदि कुछ समय पश्चात् उसकी चोरी हो जाय तो फिर वह उसके लिये दुःखी होता है। कारण यह कि मार्ग से उठाने के पश्चात् उसने उसे अपना समझ लिया। उस अपनेपन ने उस वस्तु के प्रति मोह उत्पन्न कर दिया। जब उस वस्तु का वियोग हुआ तो मोह के कारण उसे कष्ट हुआ। इसी प्रकार माता, पिता आदि मार्ग के यात्री हैं। सब की यात्रा अलग-अलग और यात्रा का समय भी अलग-अलग है। इनका वियोग होता ही है। इसलिये यदि इनके साथ अपने सही सम्बन्ध को जान लिया जाय तो फिर वियोग के समय अधिक कष्ट नहीं होगा। इसलिये यह उपदेश ही मानव के लिये हितकारी है।

विद्यार्थी—अपनापन या मोह उन्पन्न हुए बिना कोई किसी की सेवा, सहायता व चिन्ता कैसे करेगा ? अपनेपन की भावना के बिना तो संसार की प्रगति ही रुक जायेगी।

महात्मा—भोले बालक ! मैं अपनेपन की भावना के विरुद्ध कहाँ हूँ मैं तो चाहता हूँ कि अपने मन की भावना की खूब वृद्धि हो, पर भेद समझना चाहिए। मेरा कहना यह है कि जिस वस्तु के प्रति जिस सीमा तक अपना मन है उसी सीमा तक मानने में लाभ है।

विद्यार्थी—जिन वस्तुओं पर हमारा पूर्ण अधिकार नहीं या हमारी अपनी नहीं उनके प्रति अपनेपन की भावना कैसे जागृत हो सकती है ?

महात्मा—रेल में चलने वाला यात्री किसी विशेष सीट या बर्थ को जो उसके नाम पर विधिवत् आरक्षित हुई है, अपना कहता है। उसकी रक्षा व स्वच्छता के लिये प्रयत्न करता है। परन्तु अपना कहता हुआ भी अपने अन्दर भली-भाँति समझता रहता है कि सीट पर उसका पूर्ण अधिकार नहीं

अपितु प्रयोगाधिकार मात्र है। यही कारण है कि अपना गन्तव्य स्टेशन आने पर वह सहर्ष उसे छोड़कर चल देता है और उसके वियोग के कारण दु:खी नहीं होता। ठीक इसी प्रकार यदि संसार में चला जाय तो फिर मानव को वियोग के कारण दु:खी होना न पड़े। यजुर्वेद ने जीवन के इसी मार्ग को सर्वोत्तम बतलाते हुये कहा है—

ईशावास्यमिदं ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

४०।१

यह सब जो कुछ पृथ्वी पर चराचर वस्तु है ईश्वर से आच्छादित है। संसार की भोग सामग्रियों को ईश्वर द्वारा प्रयोग मात्र के लिए प्रदत्त मान कर इनका प्रयोग कर। दूसरों के अधिकार को छीनने का लालच मत कर।

विद्यार्थी—महात्मा जी! साम्यवाद आप की इस बात से सहमत है कि दूसरों के अधिकारों की चोरी से ही संसार में वर्ग संघर्ष व अशान्ति है तो क्या आप साम्यवाद का समर्थन करेंगे?

महात्मा—भाई शोषण के विरुद्ध साम्यवादी लड़ते हैं इतने अंश में मैं उनका समर्थक हूँ, परन्तु जब वह रोटी, कपड़ा, मकान के नाम पर दूसरों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता अर्थात् स्वतंत्रतापूर्वक लिखने, बोलने व चलने के अधिकार का जहाँ वह शोषण या अपहरण करते हैं वहीं मैं उनका विरोधी हूँ। शोषण आर्थिक क्षेत्र में ही घातक होता हो, सो बात नहीं अपितु सर्वत्र ही घातक होता है। साम्यवादी यह नहीं मानते अपितु आर्थिक शोषण को ही शोषण समझते हैं।

वैदिक धर्म व संस्कृति की दृष्टि में प्रत्येक माता, पिता, पुत्र, स्त्री, परिवार, समाज का अपना कर्तव्य व अधिकार होता है। जब तक सब अपने आप कर्तव्य का पालन नहीं करेंगे; और सबको अपने आप अधिकार प्राप्त नहीं होंगे तब तक समाज किस प्रकार सुखी बन सकता है? अधिकांश परिवार इसीलिये दु:खी होते हैं कि उनमें किसी न किसी के द्वारा किसी के अधिकारों का हनन होता रहता है।

महात्मा जी के उत्तरों से संतुष्ट हुए। सभी ने धर्म के मर्म को समझा और प्रसन्न होकर धर्म मार्ग पर चलने का व्रत लिया।

मंगाइए : बांटिए और देश को बचाइए

१: ईसाई पादरी उत्तर दें ।	—स्वामी श्रद्धानन्द	३)	सैकड़ा
२. Achallaage to the christian Faith	,,	३)	सैकड़ा
३. Bible in the Balance	—चार्ल्स स्मिथ	१५)	सैकड़ा
४. ज्ञान विज्ञान के शत्रु ईसाई मत	—ओमप्रकाश त्यागी	१०)	सैकड़ा
५. पोप की सेना का भारत पर हमला	—भारतेन्द्रनाथ	१०)	सैकड़ा
६. ईसाइयों की प्रचार प्रणाली	—जगत् कुमार	१०)	सैकड़ा
७. पादरियों को चुनौती	—स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	१०)	सैकड़ा
८. बाइबल को चुनौती	—ओमप्रकाश त्यागी	१५)	सैकड़ा
९. और पादरी भाग गया	—ओमप्रकाश त्यागी	१०)	सैकड़ा
१०. ईसाइयत की वास्तविकता	—शाँति प्रकाश महोपदेशक	१०)	सैकड़ा
११. बाइबल कसौटी पर……	—चार्ल्स स्मिथ	१५)	सैकड़ा

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५६७, हरध्यान सिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

उदारता पूर्वक सहयोग दें

कुछ क्षेत्रों में ईसाई विरोधी साहित्य तो चाहिए पर वे धन नहीं भेज सकते, अतः वहाँ साहित्य भेजने के लिए सहयोग चाहिए। आप अपनी ओर से ईसाई प्रभावित क्षेत्रों में वितरण के लिए अधिक से अधिक साहित्य भिजवायें । यह राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा होगी । इसके लिए जितनी सहायता होगी उतना ही साहित्य हम भेजते जायेंगे। उदारता पूर्वक सहयोग दीजिए ।

राकेश रानी

—सम्पादक

जन-ज्ञान द्वारा प्रकाशित

वैदिक साहित्य

१, **वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी व अंग्रेजी)**
हिन्दी और अंग्रेजी में एक साथ, प्रत्येक मंत्र के प्रत्येक शब्द की अन्वय सहित व्याख्या: अंग्रेजी और हिन्दी में मूल्य २ रु० । सजिल्द का मूल्य २॥ रु० ।

२. **वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण**
(केवल हिन्दी में) इसमें प्रत्येक मंत्र के साथ उसका अर्थ दिया गया है। २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, महर्षि का तिरंगा चित्र । २८ पौंड काग़ज, चुने हुए भजन । ८४ पृष्ठ । मूल्य ६० पैसे । ५०) सैकड़ा ।

३. Ten Commandments of the Arya Samaj स्व० पण्डित चमूपति एम० ए० लिखित आर्य समाज के दस नियमों की पूर्ण प्रभावकारी व्याख्या, जिसका मूल्य पहले १ : ५० था अब केवल एक रु० प्रति । ७) ५० की १० प्रतियाँ मिल रही हैं। पुस्तक में महर्षि का चार रंग में चित्र अपूर्व है ।

४. Teaching of Swami Dayanand ७५ पसे
५. Vedic Way of life —ला० दीवानचन्द कृत—१)
६. Layers of life —ला० दीवानचन्द कृत—२)
७. Message of the Arya Samaj to the Universe
—भारतेन्द्र नाथ लिखित ३० पैसे । २५) सैकड़ा
८. Vedic Sandhya & Prayer संध्या और प्रार्थना दोनों की हिन्दी अंग्रेजी में व्याख्या । ३० पैसे । २० सैकड़ा

९. **वैदिक गीता (भाष्य)** २)
महान् विद्वान् स्व० आत्मानन्द जी का यह गीता भाष्य प्रचार की दृष्टि से अनुपम है। कर्म और प्रेरणा के अद्भुत संगम इस भाष्य की अपनी विशेषता है। योगेश्वर कृष्ण का तिरंगा चित्र और उनका वीर वेश देखकर आप मुग्ध हो जायेंगे ।

१०. **योगेश्वर कृष्ण**—भगवान् कृष्ण का यह जीवन चरित्र लाखों व्यक्तियों तक पहुँचाना चाहिये । ब्र० जगदीश विद्यार्थी एम० ए० लिखित मूल्य ४० पैसे । ३०) सैकड़ा ।

११. **क्रान्तिकारी दयानन्द**—युग प्रवंतक दयानन्द के क्रान्तिकारी स्वरूप से सभी को परिचित कराने हेतु पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। प्रोफेसर संतराम एम० एस० सी० लिखित । ७५ पैसे

१२. **यज्ञ प्रसाद** —महात्मा आनन्द स्वामी कृत मूल्य ४० पैंसे । ३०) सैकड़ा । आप यज्ञ करते होंगे तो यज्ञ के बाद प्रसाद भी बाँटते ही होंगे । यह प्रेरक महात्मा जी का रचना प्रसाद है। इसे मंगाइये और यज्ञ भावना फैलाने हेतु वितरण कीजिए ।

१३. **गीत मंजरी** .... ८० पैसे

ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सचमुच अपने आप को भुलाना चाहते हैं तो गीत मंजरी का सहारा लीजिए। पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है ।

१४. **ज्ञान प्रकाश** —हरिशरण सिद्धाँतालकार मूल्य १)५० पैसे
—दीनानाथ सिद्धाँतालंकार

आर्य समाज के २ विद्वानों की लेखनी ने सत्यार्थ प्रकाश का सार जिस आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है वह प्रचार के लिए अनुपम है। सत्यार्थ प्रकाश के गूढ़ रहस्यों तक पहुँचने के लिए ज्ञान प्रकाश पढ़िए, और प्रसारित कीजिए—१०) की १० प्रति, और ७५) सैकड़ा। शीघ्र मंगाइए, स्टाक बहुत थोड़ा है

१५. **वेद ज्योति**—४०० मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह—मूल्य ३) ।

१६. **प्रार्थना मंत्र व्याख्या**—प० हरिशरण जी सिद्धाँतालंकार लिखित प्रार्थना मंत्रों की अनुपम व्याख्या । मूल्य ४० पैसे

१७. **भारत की अवनति के ७ कारण**—आचार्य जगदीश एम० ए० की लोह लेखनी द्वारा लिखित पृष्ठ ६८ । मूल्य ४० पैसे । ३५) । सैकड़ा २५०) हजार ।

१८. Light of Truth ७५ पैसे ।

१९. **वैदिक अध्यात्म ज्योति**—४०८ मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह मूल्य २)

२०. **योग जीवन** मूल्य २)

२१. **नीति दोहावली** मूल्य ८० पैसे

२२ **ज्ञान ज्योति**—३५० वेद मन्त्रों की व्याख्या मूल्य ३)

२३ **लाल आंधी**.. मूल्य ८० पैसे

यह सम्पूर्ण साहित्य भारी संख्या में मंगा कर
अपने क्षेत्र पर वेद पताका लहराइए

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यान सिंह रोड़, (निकट ३१ नाई वाला)
करौल बाग नई दिल्ली-५

अपने आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर कुल व्यय का २० प्रतिशत साहित्य वितरण पर लगाइए ।

२० सितम्बर १९७० तक

जन - ज्ञान (मासिक) के सदस्य बनने पर

१५) २५ पैसे की पुस्तकें उपहार में प्राप्त करें

आर्य जनता को यह जान परम हर्ष होगा कि 'जन-ज्ञान' की सदस्यता बढ़ाने के अभियान में हमने २० सितम्बर १९७० तक "जन-ज्ञान' का नया सदस्य बनने पर १५) २५ की पुस्तकें उपहार में देने का निश्चय किया है।

आप केवल १०) भेज दें आपको इस उपहार के अतिरिक्त अप्रैल १९७१ तक जन-ज्ञान के सभी अंक, जिनमें अनेक विशेषांक भी होंगे, मिलते रहेंगे।

इनके अतिरिक्त निम्न पुस्तकें आपको इस समय उपहार में दी जाएंगी।

१. ज्ञान-ज्योति मूल्य ३.००। २. ज्ञान-प्रकाश मूल्य १.५०। ३. धर्म चिन्तन मूल्य २.००। ४. स्वर्ण पथ मूल्य २.००। ५. योग जीवन मूल्य २.००। ६. क्रांतिकारी दयानन्द मूल्य ७५ पैसे। ७. भारत की अवनति के ७ कारण, मूल्य ५० पैसे। ८. लाल-आँधी मूल्य ८० पैसे। ९. नीति-दोहावली मूल्य ८० पैसे। १०. योगेश्वर कृष्ण मूल्य ४० पैसे। ११. यज्ञ प्रसाद मूल्य ४० पैसे। १२. गीत मंजरी मूल्य ८० पैसे। १३. आर्य समाज क्या मानता है? १५ पैसे। १४. विश्व को वेद का संदेश, १५ पैसे। कुल जोड़ १५.२५

ऐसा अवसर बार-बार न आएगा

उपहार रजिस्ट्री से प्राप्त करने के लिए २॥) अलग से भेजिए या स्वयं कार्यालय से ले जाएं।

शीघ्रता करें उपहार समाप्त हो जाने पर फिर योजना समाप्त हो जाएगी।

व्यवस्थापक

जन-ज्ञान १५९७ हरध्यान सिंह मार्ग नई दिल्ली ५

आदर्श व्यक्तित्व सरलता, सौम्यता और गरिमा के प्रतीक

सेठ श्री प्रताप सिंह जी शूर जी वल्लभदास

७ वर्ष तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान रह इस वर्ष आपने उपप्रधान बनना स्वीकार कर अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है।

अजात-शत्रु, शांत, उदार और सच्चे मित्र

डा० हरिप्रकाश

मंत्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

भारत के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री
विख्यात नेत्र विशेषज्ञ
पद्मभूषण

डा० दुखन राम

आप इस वर्ष सार्वदेशिक सभा के प्रधान निर्वाचित हुए हैं। रचनात्मक कार्यों द्वारा आर्य समाज को आगे ले चलना आपका लक्ष्य है।

आप 'जन-ज्ञान' के आजीवन सदस्य हैं। आपका आशीर्वाद सदा ही हमें प्राप्त रहा है।

भारत के प्रसिद्ध
विधि विशेषज्ञ
श्री सोमनाथ
एडवोकेट

सार्वदेशिक सभा और राजधानी में आर्य समाज की गतिविधियों के प्रेरणा स्रोत: धर्म निष्ठ, कर्मठ और ऋषि भक्त

वैदिक अन्वेषक

और

आर्य समाज के गौरव

सार्वदेशिक अनुसन्धान विभाग के अध्यक्ष आचार्य श्री पं० वैद्यनाथ शास्त्री, एम० ए०

Vedic light के सम्पादन व अनेक हिन्दी, अंग्रेजी ग्रन्थों को लिख आपने आर्य समाज की अपूर्व सेवा की है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

के कोषाध्यक्ष

श्री बालमुकन्द जी

आपके प्रयत्नों का परिणाम चांदनी चौक में स्थापित स्वामी श्रद्धानन्द का विशाल स्टेच्यू है।

भारत में आर्य समाज आन्दोलन के प्राण, कर्मठ और धुन के धुनी जिन्हें दिन-रात आर्य समाज के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं

श्री रामगोपाल जी संसद् सदस्य

आपकी इच्छा न होते हुए भी सभी ने इस बार आपके सुदृढ़ हाथों में पुनः सार्वदेशिक सभा का मंत्रित्व सौंपा है। आपका वरद हस्त 'जन-ज्ञान' की प्रगति का आधार है।

आर्य प्रतिनिधि सभा
पंजाब के प्रधान

दीवान रामशरण दास

आपके नेतृत्व में पंजाब में आर्य समाज शिथिलता दूर कर रहा है।

आप 'जन-ज्ञान' के आजीवन सदस्य हैं।

पंजाब में हिन्दुओं और हिन्दी के एक मात्र रक्षक श्री वीरेन्द्र जी।

"जन-ज्ञान" के आप भी आजीवन सदस्य हैं। आर्य समाज को गति देने में आपका मस्तिष्क निरन्तर चिन्तन रत रहता है।

प्रान्तीय आर्य महिला सम्मेलन उत्तर प्रदेश का अधिवेशन कानपुर में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर अश्लीलता के बढ़ते प्रवाह को रोकने हेतु 'अश्लील नारी चित्र विरोधी सम्मेलन' भी हुआ। सम्मेलन में भाषण दे रही हैं देहरादून की प्रोफेसर श्रीमती शांति देवी जी। पास में अध्यक्ष के रूप में "जन-ज्ञान" की सम्पादिका श्रीमती राकेश रानी बैठी हैं। सम्मेलन ने बहनों का आवाहन किया है कि भोगवाद, फैशन और पश्चिम के प्रवाह से परिवारों की रक्षा की जाए।

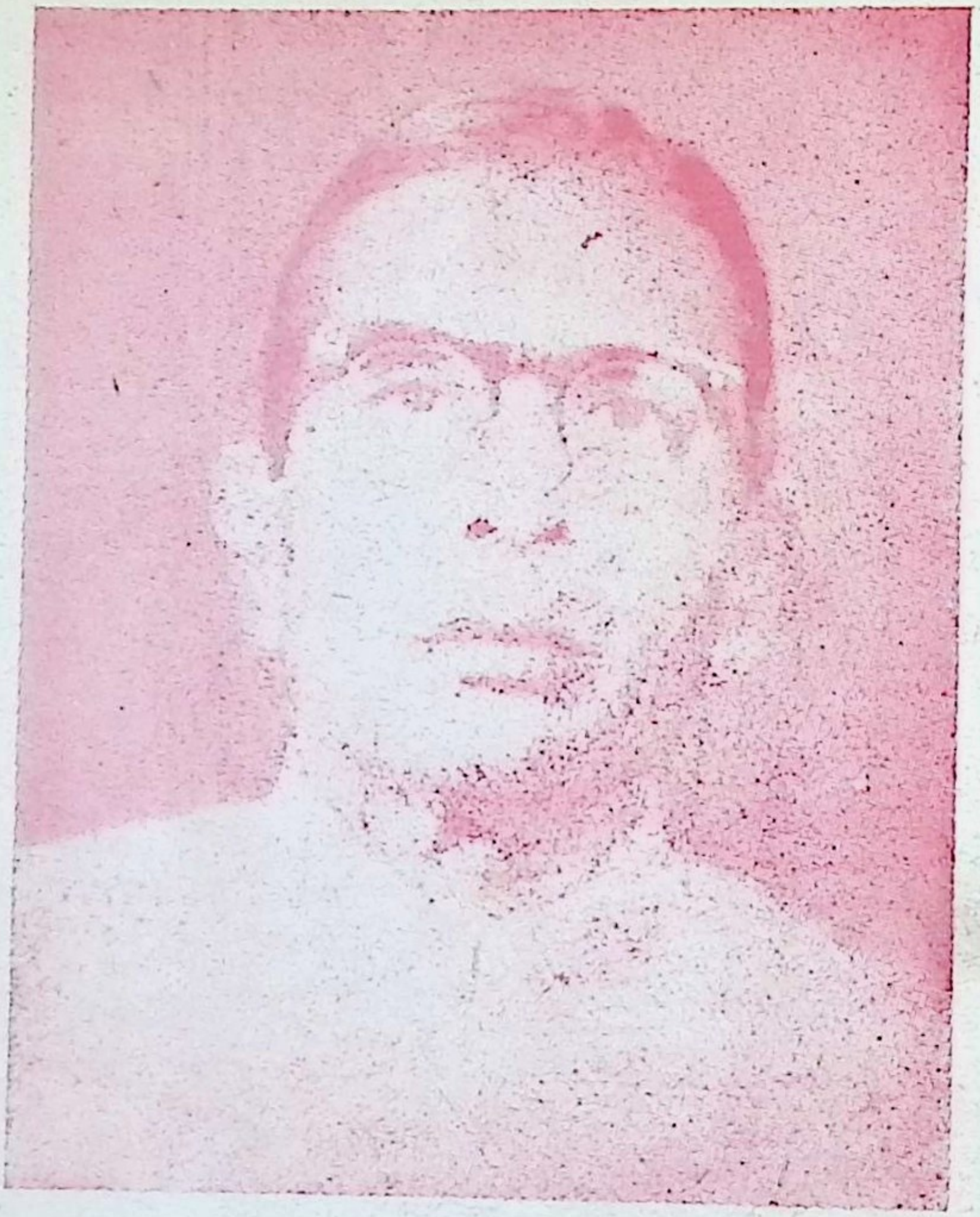

दिन-रात परिश्रम कर आर्य समाज की उन्नति के लिए कर्म करने वाले, आदर्श और उत्साही व्यक्ति हैं—

श्री पं० मुरारी लाल जी

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपमंत्री के रूप में आपकी सेवाएं सदा स्मरण रहेंगी ।

अंग्रेजी सत्यार्थ-प्रकाश का मूल्य

३० सितम्बर १९७० तक

केवल ५) होगा

किन्तु ३० सितम्बर के बाद

१०) की एक प्रति मिलेगी।

४५) की ५ प्रतियां मिलेंगी।

८०) की १० प्रतियां मिलेंगी।

१८७) ५० पैसे की २५ प्रतियां मिलेंगी।

३५०) की ५० प्रतियाँ मिलेंगी।

६००) की १०० प्रतियां मिलेंगी।

कृपया शीघ्रता करें और अपना आदेश आज ही भेज दें

आदेश के साथ चौथाई धन भेजें

डाक व रेल व्यय पृथक् होगा

व्यवस्थापक

जन-ज्ञान-प्रकाशन, १५९७ हरध्यानसिंह रोड नई दिल्ली ५.

दयानन्द ! मर रहा·········
शासकों की कुटिलता से,
नन्हीं जान के बदले में,
जगन्नाथ के छल-घात में,
विषाक्त दूध के प्याले में,
दयानन्द ! मर गया इक बार ।
परन्तु ?
आर्यों की आपसी फूट से,
वाद-विवाद, घोर निद्रा से,
वेद प्रचार प्रमाद से,
और ?
आर्यों के अनार्यत्व से,
दयानन्द ! मर रहा
बार-बार ! बार-बार !! बार-बार !!!

—चितरंगी

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥

पद्यानुवाद :—

हे प्रकाश स्वरूप देव, सुदेव, ज्ञान स्वरूप हे ! ।
सकल सुखदाता पिता हे ! दिव्य देव अनूप हे ! ॥
विज्ञान, राज्य, ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु हम बढ़ते रहें ।
आप्त जन जिस मार्ग से चलते रहें, वह पथ गहें ॥
विज्ञान उत्तम कर्म सब हममें पिता ! भर दीजिए ।
कुटिलता से युक्त दूषित कर्म सब हर लीजिए ॥
नित नम्रता पूर्वक प्रशंसा के वचन बोला करें ।
तेरी कृपा के पात्र बन आनन्द से डोला करें ॥
तव स्तुति और उपासना में हम सदा संलग्न हों ।
करते हुए तव प्रार्थना आनन्द में ही मग्न हों ॥

—विद्याभास्कर शास्त्री

केवल उनसे

जो वैदिक विचारधारा का प्रचार चाहते हैं

"अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश" का प्रकाशन आरम्भ हो चुका है। पूंजी न होते हुए भी इस महान् ग्रन्थ के प्रकाशन का श्रेय वस्तुतः 'जन-ज्ञान' के सदस्यों को ही है जिनकी शक्ति ही हमारी शक्ति है। अत्यन्त आकर्षक, सुन्दर और बढ़िया कागज पर English सत्यार्थ प्रकाश को अपने द्वारा अन्यों को भेंट कर आप स्वयं गौरव अनुभव करेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश के आदरी संपादक मंडल में आर्य समाज के गौरव आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री, आचार्य जगदीश जी विद्यार्थी एम० ए०, व श्री रघुनाथ प्रसाद 'पाठक' का सहयोग और मार्ग दर्शन मिल रहा है। सार्वदेशिक सभा के मंत्री श्री रामगोपाल जी व श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी ने भी इस प्रकाशन पर हार्दिक शुभ कामनाएँ प्रदान करने के साथ-साथ अपने सहयोग का आश्वासन भी दिया है।

यह संस्करण प्रत्येक दृष्टि से up-to-Date हो, कोई भी त्रुटि न रहे, इसके लिए हम यत्नशील हैं। प्रभु कृपा करेंगे तो दीवाली से पहले-पहले आप इसको देश विदेश में वितरित कर सकेंगे। अंग्रेजी अनुवाद स्व० पं० दुर्गाप्रसाद जी का किया है। पुराने आर्य भली भाँति जानते हैं कि पं० दुर्गाप्रसाद जी कितने उच्च कोटि के ऋषि भक्त और अंग्रेजी के विद्वान् थे। इतना ही कहना पर्याप्त है कि सत्यार्थ प्रकाश के इस अंग्रेजी अनुवाद में ऋषि की भावना और आत्मा के आप दर्शन कर सकेंगे।

हम योजनाएँ और घोषणाएँ करने में नहीं कार्य में विश्वास रखते हैं गत २९ मास का हमारा कार्य स्वयं अपनी कहानी कह रहा है। तूफान और आँधियों में अडिग 'जन-ज्ञान' आज यह गर्व कर सकता है कि उसे आर्य

जनता का प्यार दुलार मुग्ध भाव से प्राप्त हुआ है। इसी आशीर्वाद के बल पर आज उसकी सदस्य संख्या आर्य समाज के पत्रों में सबसे अधिक है। १२ आकर्षक विशेषांक गत २९ मास में भेंट कर जो सेवा संभव हुई वह की और की जा रही है।

धन का अभाव हमारी एकमात्र समस्या है। वह न था न है, फिर भी प्रभु की कृपा से कभी कार्य रुका नहीं और रुकेगा भी नहीं यह अटल विश्वास है, इसी विश्वास से अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश प्रैस में दे दिया, तो वह तो निश्चित ही छप जायेगा। किन्तु हजारों रुपए का कागज चाहिए, कहाँ से आए ? इस समय यही सोच रहा हूँ..............

और सोच रहा हूँ कि सर्वान्तिर्यामी प्रभु सच्चे ऋषि भक्तों को प्रेरणा अवश्य करेंगे कि वे इस पवित्र कार्य के लिए व्रत रखकर भी अपनी आहुति अवश्य भेजें।

जो यह मानते हों कि महर्षि की विचारधारा का विदेशों में प्रचार होना चाहिए उनसे ही हम कह रहे हैं, अन्यों से कहना व्यर्थ कि मेरे भाई ! बूंद-बूंद से घट भरो ! एक दिन व्रत रखकर भी सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन में सहयोग प्रदान करो।

प्रभु का कार्य है, प्रभु करेंगे ही हम तो निमित्त मात्र हैं, आर्य जन...... सोचिए हृदय में कि क्या हमारा कर्त्तव्य है और अंत: प्रेरणा से कुछ अपनी आहुति शीघ्र भेजिए। इच्छा है कि अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश के साथ ही महर्षि का अंग्रेजी जीवन चरित्र भी दीपावली तक छप जाए पर इस इच्छा की पूर्ति हमारे हाथ नहीं, आपके हाथ में है।

यदि इन दोनों ग्रन्थों का प्रकाशन आप व्यर्थ नहीं समझते तो १) भेजिए या १०००) पर आज ही भेजिए अवश्य, आगे बढ़ने के लिए आपकी आहुति की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं।

यह अन्तिम अवसर है

'जन-ज्ञान' का आजीवन शुल्क १०१) था फिर १५१) किया, किन्तु अनेक पत्र आने से ४ सितम्बर तक फिर १०१) कर दिया। वास्तव में १०१) में जीवन भर 'जन-ज्ञान' प्राप्त करना प्रत्येक दृष्टि से लाभ की बात थी—किन्तु हम पर यह भारी दायित्व है। हो सकता है कि शुल्क में वृद्धि

होती जाए फिर भी आजीवन सदस्यों को तो भेंट करना ही है। यह सब विशुद्ध प्रचार की दृष्टि से किया गया था।

अब आजीवन सदस्यता शुल्क २०१) दो सौ एक रुपए कर दिया है और किसी भी स्थिति में किसी का भी शुल्क १५ सितम्बर १९७० के बाद २०१) से कम स्वीकार न किया जाएगा, १०१) में आजीवन सदस्य बनने का यह अंतिम अवसर है।

अतः इन पंक्तियों को पढ़ते ही आजीवन सदस्य बनने हेतु १०१) भेज दें। १५ सितम्बर के पश्चात् न धन स्वीकार होगा, न आग्रह। इस सम्बन्ध में कृपया इस निर्णय को अन्तिम समझें।

जिन्हें भी वैदिक विचारधारा प्रसार की चिन्ता हो वे अब प्रतीक्षा न करें उदारता से १०१) आज ही भेज दें, इससे जहाँ आपको लाभ होगा। वहां हमें सत्यार्थप्रकाशादि प्रकाशन में सुविधा होगी।

क्या हम आशा करें कि हमारे माननीय सदस्य प्रार्थना स्वीकार कर इस अंतिम अवसर से लाभ उठा हमें आगे बढ़ने में सहारा देंगे ?

हम अपना काम करते जा रहे हैं, करते जाएंगे, प्रभु हमें शक्ति दो कि हम समय के साथ न बहें, समय को बदलने में समर्थ हो सकें।

—भारतेन्द्रनाथ

क्या ऋषि जीवन न छप सकेगा ?

इच्छा है कि दीवाली से पहले English सत्यार्थ प्रकाश के साथ-साथ महर्षि दयानन्द का अंग्रेजी जीवन-चरित्र भी छप जाए, क्योंकि अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों को देने के लिए ऐसी भेंट नहीं है।

वस्तुतः यह हमारे लिए अत्यन्त लज्जा की बात है कि हम अपने गुरुदेव का जीवन चरित्र भी किसी विदेशी को भेंट न दे सकें। इच्छा है कि यह कमी पूरी हो, किन्तु इच्छा की पूर्ति कौन करे ?

प्रश्न बड़ा सीधा है और कह रहा हूं ऋषि दयानन्द की जय बोलने वालों से............

कि क्या दीवाली तक ऋषि जीवन छप सकेगा ?

भारतेन्द्र नाथ

अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशन

प्राप्त आहुतियां

१.	महात्मा आनन्द भिक्षु जी सरस्वती	१[illegible]
२.	वैद्य गुरुदत्त जी उपन्यासकार नई दिल्ली	१०[illegible]
३.	श्री रामरक्खा ढांढा सिकन्दराबाद	१०[illegible]०
४.	श्री रमेशचन्द ढांढा सिकन्दराबाद	१००.००
५.	श्री द्वारका दास जी अमृतसर	५०.००
६.	श्री जयदेव आर्य बम्बई	११.००
७.	श्रीमती शन्नो देवी जी कलकत्ता	२५.००
८.	श्रीमती विद्यावती जी सब्बरवाल कलकत्ता	२५.००
९.	श्री मोती भाई गणेश जी पटेल	५.००
१०.	श्री अर्जुन प्रसाद नाथ नगर	२.००
११.	श्री रघुनाथ सिंह जी मेरठ	५.००
१२.	श्री टी० एल० बावनशेड बदनापुर	५.००
१३.	डा० जगदीश चन्द्र आंतरी	१४.००
१४.	श्री मोहनलाल जी फ़िरोज़पुर	२.००
१५.	श्री मुन्नीलाल मन्त्री नवांशहर	२.००
१६.	श्री मुन्नीलाल जी कुंवरपुर	११.००
१७.	श्री रामकृष्ण रमेशचन्द्र	१०.००
१८.	श्री नाथूलाल शर्मा मन्दसौर	५.००
१९.	डा० रघुवीरदत्त फर्रुखाबाद	५.००
२०.	श्री राधाकृष्ण आर्य पटियाला	५.००
२१.	श्री रणवीर सिंह जी कोटा	५.००
२२.	श्री रामभरोसे सिंह ग्वालियर	५.००
२३.	श्री क्षेमचन्द शास्त्री जमालपुर	५.००
२४.	श्री अमृतलाल सरपाल नई दिल्ली	२५.००

प्रार्थना स्वीकार कर, विदेशों तक महर्षि का संदेश पहुँचाने के प्रयत्न में जिन्होंने सहयोग दिया उनका आभार प्रगट करने हेतु शब्द नहीं, प्रभु कृपा करें कि हम साहित्य के महत्त्व को समझ, इस ओर ध्यान दे सकें। सफलता आपके सहयोग की प्रतीक्षा में है—

राकेश रानी

क्रमश :—

सम्पादक

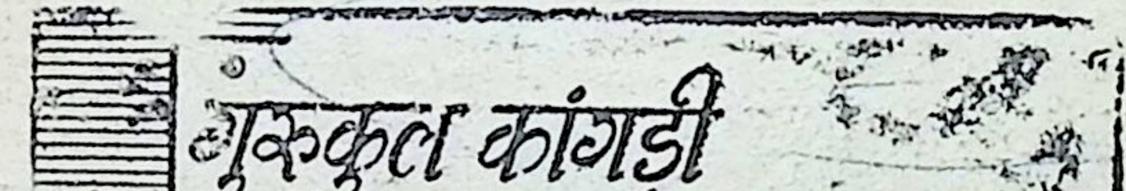

सभी आयुर्वेदिक औषधियों के लिए गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी
सदा स्मरण रखें
बड़ा सूचि पत्र व एजेंसी नियम मँगाएँ।
व्यवस्थापक-गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी P.O. गुरुकुल काँगड़ी (सहारनपुर)

'जन-ज्ञान' की सहायता इस तरह भी करें

१. जब भी आपको चन्दा समाप्ति की सूचना मिले, आप अपना शुल्क तुरन्त भेज दें।

२. वी० पी० पी० की प्रतीक्षा न करें। वी० पी० पी०में आपको १)४० अधिक देना पड़ता है जो न हमें मिलता है न आपको। इसलिए धन मनिआर्डर से ही भेजें।

३. यदि किसी कारणवश आप सदस्य न रहना चाहें तो हमें सूचित तो कर ही सकते हैं। आपके १० पैसे का का कार्ड हमारे धन और समय की रक्षा कर सकता है।

४. मनिआर्डर के कूपन पर अपना पूरा नाम और पता अवश्य लिखें। सदस्य संख्या या "**नया सदस्य**" शब्द भी लिख दें।

५. 'जन-ज्ञान' आपका अपना पत्र है। इसमें जो कमी नजर आए वह हमें बताएँ। हम आपके बल पर इसके द्वारा संसार में आर्य समाज का संदेश फैलाना चाहते हैं। आपका सहयोग ही हमारी शक्ति है— —**व्यवस्थापक**

क-प्रकाशक-सम्पादक राकेश रानी द्वारा फैसलन प्रेस दिल्ली में छपा

जन-ज्ञान (मासिक)
नई दिल्ली-५

भाद्रपद संवत् २०२७

Regd. No.
D. 1631

आहारनिद्राभयमैथुनं च,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

खाने, सोने, डरने आदि में मनुष्य और पशु परस्पर समान हैं, केवल धर्म ही मनुष्यों में विशेष है। यदि वह भी न रहा तो फिर मनुष्य सर्वथा पशु के समान ही है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

ान होकर धर्म का वास्तविक रहस्य सुनो और उसे सुनकर उसी के ाचरण करो। जो कुछ तुम अपने लिए हानिप्रद और दुःखदायी , वह दूसरों के साथ मत करो।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।